महाबली दत्तू जमखंडीकर

शम्भुनाथ सक्सेना

महाबली दत्तू जमखंडीकर

महाबली दत्तू जमखंडीकर

शम्भुनाथ सक्सेना

नूतन प्रकाशन मन्दिर
ग्वालियर (म० भा०)

श्रद्धेय बन्धुवर श्री बृजराज नारायण आई. ए. एस.

को सादर समर्पित.

सूची

दो शब्द

यह मेरे ग्यारह रेखा-चित्रों का संग्रह है। इन रेखा-चित्रों में मैंने यथा सम्भव ऐसे रङ्गों को भरने का यत्न किया है जो स्वाभाविक और हृदयग्राही हों। भावना के अतिरेक से चित्र के भदरंगे हो जाने का भय रहता है। इस अँकुश का मैंने पालन किया है। व्यक्तियों के चित्रण में स्वाभाविकता हो, व्यक्तियों और और उनसे सम्बद्ध घटनाओं का यथाविधि वर्णन करने की क्षमता हो और शैली में उद्भावनाओं को कुरेदने की शक्ति हो, तो कोई कारण नहीं कि रेखा-चित्र सजीव न हो उठें—बोल न उठें।

यह रेखा-चित्र व्यक्तियों के हैं। कल्पना का धरातल इनका सामान्य है लेकिन हरेक रेखा-चित्र के पीछे व्यक्ति, उसका चरित्र, घटनाएँ और उनके कर्म की पृष्ठ भूमि यथार्थ है। इस यथार्थ की अवहेलना कर सजीवता का दावा नहीं किया जा सकता। शैली और उसमें सन्निहित व्यंग मात्र मेरे हैं लेकिन घटनाओं में खोखलापन या मनघड़न्त किस्सों का आधार नहीं है। स्पष्ट यह है, मैं ऐसे कथानकों में विश्वास नहीं करता जो मानव के दैनिक जीवन की परम्पराओं से परे हों, उनकी कमज़ोरियों, उनके द्वारा सृजित समाज और समाज में प्रचलित रूढ़ियों के कारण उत्पन्न

आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं का विसर्जन या त्याग कर एक सुपर-मेन को मूर्तरूप देकर गढ़े गये हों।

युग-धर्म यह है कि अपने विवेक को लेकर हम व्यक्ति और व्यक्ति से सम्बद्ध समस्याओं का विवेचना करें—जो असंगत, अनीतिकर और अमानवीय है उसकी आलोचना विवेक के आधार पर करें। यदि इस भावना को सिद्ध करने में मेरे यह ग्यारह रेखा-चित्र सफल उतरेंगे, तो मैं समझूँगा कि मुझे सफलता मिली—अन्यथा मात्र मनोरंजन के हेतु सृजित किये हुए साहित्य 'किस्सा तोतामेना' या 'चहार दरवेश' की भाँति यह पुस्तक भी उस साहित्य का ही एक अँश बन कर रह जायेगी।

हरेक रेखा-चित्र में एक प्रयोग है। पूर्णता इनमें नहीं है। फिर भी प्रयास यह अभिनव है ऐसी मेरी मान्यता है। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने से क्या लाभ, मज़ा तो जब है कि आप पढ़ें और कहें कि 'बात तो यह ला जवाब है।'

२० जून १९५४
जयविलास, ग्वालियर (म० भा०)

शम्भुनाथ सक्सेना

बेरंगजी

वह एक हस्ती हैं—हमारा अडिग विश्वास है कि एक महान हस्ती हैं, जिनकी समस्त उर्वरा कल्पनाओं और भावनाओं—कार्य और योजनाओं को लिपिबद्ध करना असम्भव है। अरे साहब, नितान्त असम्भव है! वैसे केवल उन्होंने जीवन के मुश्किल से चालीस बसंत, चालीस दीवालियां और चालीस होलियां पार की होगीं, लेकिन इस चालीस के आंकड़े में उन्होंने जीवन की वह ज्योति निहित कर दी है, वह आकर्षण और योजनावत् कल्पना, कर्मण्यता और पराक्रम का इतिहास समन्वित कर दिया है कि जनाब वर्तमान परिस्थितियां में अब 'हरफन मौला' बन गए हैं। अब कवि हैं, तो भूषण की प्रतिमूर्ति, राष्ट्र कवि हैं; पत्रकार हैं तो उन युगीन पत्रकारों में से हैं, जिनकी गणना संघर्षरत जीवन व्यतीत करने, स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के सम्बन्ध में अंगुलियों के पोरों पर नहीं, केवल अंगुलियों पर की जासकती है। लेखक हैं तो बेजोड़ और संवाद-प्रेषक हैं तो बेपर के उड़ाया करते हैं। अपनी अनुभूतियों के साथ वह कभी आसमान के लम्बे—चौड़े प्रांगण में उडान भरा करते हैं तो कभी फारस देश से निरन्तर उड़ने वाले

काज पंछी की तरह क्षितिज तक सीधी उड़ान भरते चले जाते हैं। और यदि विषम परिस्थितियों से टकराकर कभी धरती पर आलगे तो बडी आसानी से सहयोगियों के लिए, मित्रों के लिए, शुभचिंतकों के लिए क्या (?) के प्रश्नसूचक चिन्ह बन जाते हैं। तो वह पत्रकार हैं, कवि हैं, लेखक हैं, समालोचक हैं। लेकिन ये तो मामूली बातें हैं, जो उनकी हस्ती को निखारने में गौण, किन्तु क्षीण साधन अवश्य रहे हैं।

आप सत्य मानिए, उनकी गर्दन कोताह, यानी मूसल के नीचे वाले हिस्से की तरह छोटी अवश्य है—पेशानी भी दरिया के किनारे की निकटवर्ती मौंजों-सी हा सिकुडी हुई संक्षिप्त है। लेकिन इसके आगे वह क्या हैं इसका निर्णय इस स्केच को पढ़कर आप करने के लिए हवा–से मुक्त हैं। तो सुनिए, यदि आप नई दिल्ली के, सेन्ट्रल कोर्ट होटल, कॉफी हाउस, साउस इन्डिया बोर्डिंग हाउस, निरुला या अन्य राजधानी के किसी शानदार होटल में खादी का पाजामा, नीचा कुर्ता, नेहरू कट वास्कट, पैरों में बेमरम्मत की हुई सेन्डिल और एक ऊनी कम्बल को अपने चारों तरफ लपेटे हुए किसी हलद्वानी के पहाडी आलू की शक्ल, कटहल के गूदे से उभरे हुए मसूडों में, पान-सिगरेट की ज्यादती के कारण सियापा लिए हुए श्यामा-सेम के बीजों-सी बतीसी के व्यक्ति को सिर के बाल बढाए देख लें तो एक क्षण में आप उन्हें पहचान लेंगे, कि अरे, इनके विषय में तो कुछ पढा था, इनका ही लिखा लेख, कविता, और न जाने क्या–क्या नहीं पढ चुके हैं ? यह तो वास्तव में बडे विचित्र हैं ! बड़े जीवट के हैं । बडे अदम्य पौरुष के महानुभाव हैं। यदि आप उनके परिचितों में से हैं और वह अपने होश-

हवास में हैं, तो वह दोनों हाथ जोडकर आपका अभिवादन करेंगे:—

" कहिए श्रीमानजी, क्या हाल है ? "

लेकिन उनका मस्तिष्क एक तेजी के साथ अपना ध्यान इस ओर केन्द्रित कर देगा कि आज के दिन जब आप उन्हें मिल गए हैं तो किस कदर आप उनका साथ दे सकते हैं ? कहाँ तक आपकी जेब उनकी आजकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है ? यदि उन्हें अपनी विलक्षण बुद्धि से ज्ञात होगया कि आपकी जेब और आपका विवेक उनका साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं, तो वह आपको शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार खिसका देंगे जिस प्रकार पिटे हुए मोहरे को शतरंज का खिलाडी और अधिक अपने पास नहीं रखना चाहता। उनकी सबसे बडी विशेषता यही है कि ऐसे अवसरों पर उन्हें बहुत कम असफलता का सामना करना पडा है। जो परिचित या मित्र उनके सम्पर्क में आए हैं उनका, उनकी कर्मठता में निश्चित मत है कि वह असफलता में, जीवन में आई निराशा में और विपत्तियों में फंस जाने पर हिम्मत हार बैठने में किंचित भी विश्वास नहीं करते। यही कारण है जहां कभी आर्थिक कठिनाइयों ने, विपरीत लोकमत ने या विक्षोभ के अन्य कारणों ने उनके विरुद्ध वातावरण का सृजन किया है और उन्हें परत कर देना चाहा है, वहीं उन्होंने अपने को और अधिक सबल अनुभव किया है। उन्हें, उनकी उर्वरा कल्पना-शक्ति ने कभी कुंठित नहीं होने दिया है और न उनका साहस ही परिश्रान्त पथिक की तरह विश्राम करने के लिए दूभर जीवन-यात्रा से थककर हार मान सका है। नित्य एक नई प्रेरणा, एक नई सूझ, एक नए विश्वास की भावना उनके जीवन में स्फूर्ति का संचार करती

है और वह उसके अवलम्ब पर निर… …ि की उन लहरों की तरह आगे बढ़ते जाते हैं, जिन्हें प्रतिक्षण अ… …, वाली तरंगों से गति और बल मिलता रहता है।

"बेरंगजी" उनका काव्य-जगत में उप-नाम है। जिसकी गरिमा और अत्यधिक प्रसार ने उनके वास्तविक नामको ठीक उसी प्रकार तिरोहित कर दिया है, जिस प्रकार से हाथ से छूटा हुआ गैस का गुब्बारा आकाश में लम्बी उड़ान भरता हुआ विलीन होजाता है। तो बेरंगजी जहां अपने तईं लापरवाह हैं, वहां यह लापरवाही लोकवाद और समाज के प्रति भी कुछ कम नहीं है। दुनिया क्या कहती है, दुनिया उनके विषय में क्या सोचती है, इसकी उन्हें किंचित भी चिन्ता कभी, किन्हीं क्षणों में अनुभव नहीं होती। बस, यह समझिए कि वह एक अलमस्त फकीर हैं, जो मान–अपमान की भावना से बहुत ऊँचे उठ गए हैं,यश–अपयश के थोथे विचार उनके व्यक्तित्व को छु नहीं पाते। उनका अपने सम्बन्ध में एक स्थायी दृष्टिकोण हैं और वह उसी दृष्टि से जीवन और दुनिया का पर्यवेक्षण करते हैं। यदि आप उनके काम आसकते हैं, उनके किसी कार्य में आपकी उपयोगिता है तो बेरंगजी की समस्त अनुभूतियां, कला और दक्षता आपके सामने हाथ जोड़े खडी रहेगी। वह हंसेंगे, कविता पाठ करेंगे आपके मनोरंजन के लिए चुटकुले सुनाएंगे, वे–वे लंतरानियाँ आपके सामने बयान करेंगे कि आप उनके व्यवितत्व से, उनके बात करने के ढंग से प्रभावित हुए बिना न रह सकेंगे। आप जानते हैं कि आपको बुद्धू बनाया जारहा है और यह जानते हुए भी उनकी कला, उनकी बातों और उनके हाव-भाव से प्रभावित हुए आप बुद्धू बन जाएंगे।

नई दिल्ली के शिष्ट-समाज में, अपने सहयोगियों में अपने शुभेच्छुओं में वह अपनी इस कला को लेकर पारंगत मान लिए गए हैं। लेकिन इस स्थायी 'गौरव' को मान लेने के बावजूद भी उनके हाथों में वे लोग खेल जाते हैं। अभी कुछ दिन ए मेरे एक मद्रासी मित्र ने, जो उनसे अच्छी तरह परिचित हैं, आपबीती इस प्रकार सुनाई थी——

लगभग एक वर्ष बाद एकाएक एक दिन उनके दर्शन हुए। बड़े गम्भीर, बड़े भावुक ! प्रणाम कर सामने के सोफा पर बैठा गए। एक बार उन्होंने सामने बैठे हुए मेरे मित्र की ओर गौर से देखा और दूसरे ही क्षण बोले—

"डॉक्टर, आजकी दुनिया बड़ी विचित्र है।"

डाक्टर, जो अंग्रेजी में 'अर्थ' और 'राजनीति' के विषयों के प्रसिद्ध लेखक, विचारक और सम्पादक भी हैं, उन्होंने सादगी से उत्तर दिया——

"आप ठीक कहते हैं।"

बेरंगजी ने अधिक गम्भीर होकर अनिमेष दृष्टि डाक्टर की आकृति पर केन्द्रित करते हुए कहा——

"यह विचित्रता आज हरेक चीज के अन्दर विद्यमान है। मैं कहता हूं डाक्टर, इस विचित्रता ने आज हरेक वस्तु का रंग पलट दिया है। जिस वस्तु में आज विचित्रता नहीं है, उसका आज कोई मूल्य नहीं है। और इसीलिए मैं और आप, हरेक एक-दूसरे के लिए विचित्र बना हुआ है।"

वह थोड़ा मुसकराए और कहने लगे——

"और मैं कहता हूं डाक्टर, यह विचित्रता ही जीवन है गति है,

परेशानियों से उनका चेहरा थोड़ा विकृत हुआ—

"बड़े आश्चर्य की बात है अभीतक मनीआर्डर नहीं आया।"

फिर मन्द-मन्द मुसकान से अपनी परेशानियों पर पर्दा डालते हुए बोले—

"देखिए श्रीमानजी, मेरा मनीआर्डर आजाए तो......होटल पर भिजवादें।"

दूसरे दिन टेलीफोन किया—

"मनीआर्डर आगया।"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया—

"अभी नहीं आया।"

चार रोज तक यही क्रम चलता रहा। पांचवें दिन देखते क्या हैं बेरंगजी मुहर्रमी शक्ल बनाए परदानशीन नवयुवती को साथ लिए अखबार के कार्यालय में आ पहुंचे हैं। प्रबन्ध सम्पादक ने पूछा—

"कहिए बेरंगजी कुशल तो है?"

बेरंगजी ने फिर मनीआर्डर की बात छेड़ते हुए कहा—

"बड़ी मुसीबत में फंस गया हूं मित्र, थोड़ी मदद करो तो काम चले।"

फिर नवयुवती की ओर संकेत करते हुए कहा—" मेरा इनका कच्चा साथ है और पैसा अब एक भी पास में नहीं है। मनीआर्डर में एक–दो रोज की देर होसकती है, लेकिन आएगा जरूर, आप सौ रुपया दे दें। मनिआर्डर आने पर आप ले लें स रकम से बड़ी मुश्किलें पार कर जाऊंगा।"

मेरे मित्र को उनकी आपदा पर दया आगई और उन्होंने इस विश्वास पर कि दो–एक रोज में मनीआर्डर की धन–राशि आजाएगी, सौ रुपए दे दिए।

शायद यह लिखने की अब आवश्यकता नहीं है कि वे सौ रूपए न तो बेरंगजी ने आज तक मेरे मित्र को लौटाए और न उस मनीआर्डर की ही सूरत उन्हें देखने को मिली।

इस घटना के बाद उनका कोई पता नहीं लगा। किसीने कहा—

"रामेश्वरम् चले गए है"—

किसीने कहा—

"कुलू की तराई में आत्म-शक्ति संगृहीत कर रहे हैं।"

गर्ज कि कोई न उनका पता और न उनके दर्शन सुलभ! लेकिन एक आश्चर्य से हमने उन्हें अपने नगर में ही चूडीदार पैजामा और शेरवानी पहने देखा। उन्होंने हमें देखा और बोले—

"कहिए श्रीमानजी, क्या हाल है?"

हमने उत्सुक होकर पूछा—

"आप यहां कब आए?"

अधजली सिगरेट का लम्बा कश लेकर उन्होंने बतलाया कि वह...साप्ताहिक पत्र के सम्पादक चार सौ बीस रूपए प्रति मास पर होकर आए हैं और अब यहीं स्थायी तौर पर रहने का विचार कर रहे हैं।

मैंने उनकी बातों के ऐवज में कहा—

'बड़ी प्रसन्नता की बात है।"

दिन निकले और हमें किसीने बतलाया कि पंडित बेरंगजी एक लम्बी रकम हमारे नगर से वसूल कर प्रस्थान कर गए। जहां नौकरी करने

आए थे उनसे उन्होंने अग्रिम वेतन लिया। नौकरी के साथ-साथ ही उन्होंने धन उपार्जन की एक नई तरकीब खोज निकाली। हमारे नगर के मुख्य-मुख्य नागरिकों और पदाधिकारी-वर्ग की एक सूची टाइप करवाई। और सूची के हरेक व्यक्ति के पास जाकर उन्होंने कहा—

"बड़ी मुसीबत में, मैं फंस गया हूं। मैं ठहरा परदेसी आदमी। मैं क्या जानता था कि आपके शहर में ऐसे-ऐसे आदमी भी मौजूद हैं? देखिये, यह लिस्ट हमारे पत्र के मालिक ने दी है, कि इन लोगों के विरुद्ध पत्र में लिखना आरम्भ किया जाये।"

फिर नकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए बोले—

"न साहब न, अपने से यह गन्दा काम नहीं होगा। मजबूरी है कि इतने भी पैसे नहीं हैं कि यहां से दिल्ली भी जा सकूं। और इस विवशता के कारण अपना ईमान बेचना पड़ रहा है। अगर आप ५०) रु० दे दें तो इस नरक से मुक्ति पालूं। मुझसे आप जैसे सज्जन व्यक्तियों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखा जाएगा।"

और हमें परिचितों ने बतलाया कि इस तरह बेरंगजी हमारे नगर से एक लम्बी रकम 'चौथ" के रूप में लोग-बागों से वसूल कर लेगए।

खैर साहब, यह तो उनके जीवन की मामूली-सी घटनाएं हैं जो सम्भवतः उनके समक्ष कोई महत्व न रखती होंगी। क्योंकि नित नए प्रयोगों के जीवन में ऐसी घटनाओं का निर्माण हो जाना बेरंगजी जैसे व्यक्तियों के लिए कोई असाधारण बात नहीं है; लेकिन हमें तो उन्हें देखकर

प्रसन्नता इस बात की होती है कि " सारी खुदाई एक तरफ फजले इलाही इक तरफ !" सारी दुनिया चाहे कुछ बकवास करती रहे लेकिन वह अपने दृष्टिकोण को लिए अपने पथ पर अविचल चले ही जारहे हैं।

श्रीमती चिमाँबाई मुसलगाँवकर

फागुन का महीना था, जाड़ा खत्म हो चुका था और हवा में गर्मी की एक मन्द खुमारी महसूस होने लगी थी। दिन में सूर्य की तपिश तेज और असहनीय हो गई थी। इसलिये रात में खुली हवा में बैठना और खुले हुए आकाश में छिकटती रजत-चांदनी की ओर निहारना अप्रिय नहीं लगता था।

होली के दिन निकट थे और दूर गंवारों के मुहल्ले से डफ़ तथा करतलों की ऊंची ध्वनि के साथ उठता सामूहिक मानव-स्वर भली भांति सुनाई देने लगा था। चांदनी में नहाये हुए पेड़ और पतझड़ के बाद ठूंट-सी उसकी फुनगियों तथा शाखाओं में उपजती नव-कोपलों की चिकनाहट की अभूतपूर्व आभा का प्रदर्शन उस शीतल चांदनी में होने लगा था। नजदीक के बाग से आम्र-बौरे की मन्द-मन्द महक जीवन-संघर्ष से वस्त्र दिमागों को मोअत्तर कर रही थी।

चिमांबाई ने अपनी कोठरी के सामने के छोटे-से आंगन में अपनी चारपाई निकाल ली और उस पर मुद्दत से बिना धुली, मैली, किसी हद तक तेली के कपड़ों-सी चीकट दरी बिछा दी और लम्बा तकिया, जिसकी रूई अनेक जगहों से चिरे हुए होने के कारण, पेट की आंतड़ियों-सी निकली पड़ रही थी, सिरहाने डाल कर लेट गई।

चिमांबाई हमारे मुहल्ले में गत बीस वर्षों से रहती चली आ रही है। वह अपने जीवन के अड़तीस वसन्त पार कर चुकी है। उसकी अवस्था, जावनी की भरी उमंगें पार कर उस छोर पर आ लगी हैं जहां से जिन्दगी का वह अध्याय खुलता है, जिसे नौजवान अच्छी नजरों से नहीं देखते। लेकिन फिर भी वह इस बात का भरसक प्रयत्न करती है कि मनचले युवक उसकी तरफ़ एक नजर देखें और 'अतीत' की तरह ही उससे बात-चीत करें। लेकिन उसके चेहरे पर, कपोलों के ऊपर जो दो हाड़, मांस की कमी के कारण ऊपर उभर आये हैं—आंखों के नीचे जो काली भद्दी रेखाऐं बन गई हैं और चेहरे पर उम्र की जो हल्की सियाही के धब्बे पड़ गये हैं, वे उसके मार्ग में बड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। कभी–कभी तो घंटों उसने अपने श्रृंगार पर व्यय किये हैं फिर भी उसे तृप्ति नहीं मिली है। उसने अपने चेहरे को छोटे से कांच में देखा है और कपोलों के ऊपर उठे हुए दोनों हाड़ों को देखकर तथा चेहरे पर आसमान पर बारिश के बाद अवशेष-चिन्हों की तरह बने चिट्टों को देख कर वह झुंझला उठी है। उसके अन्दर उठती रसिक भावना को भारी ठेस भी पहुंची है। लेकिन कोई दस या बारह वर्ष पूर्व उसकी स्थिति, उसकी आकृति और उसकी आर्थिक अवस्था आज के अभाव-पूर्ण जीवन से भिन्न थी। यद्यपि उस समय भी वह अपने यौवन-काल के मध्य से गुजर रही थी लेकिन उसकी देह में तनिक भी शिथिलता नहीं आई थी–चोली के अन्दर कसे उरोज और पेड़ की फुनगी पर उगती एक छोटी-सी कोंपल-सी उसके उरोजों के ऊपर उठी नोक, चोली के बाहर बड़ी सुन्दर लगती थी।

लम्वा चेहरा होने पर भी उस पर लुनाई और आकर्षण पर्याप्त था। उसकी मझोली आंखें में यौवन की मादकता दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने और उससे मैत्री उत्पन्न करने की भावना को प्रेरणा देने में समर्थ थी। पस्ताकद, मनमोहक कसे हुए मांसल और गदराया हुआ शरीर, उसके भरपूर यौवन के सफल प्रतीक थे। लम्बी, काली और चिकनी केश-राशि को जिस समय चिमांबाई धूप में खड़ी हो स्नान के बाद झटकार देती थी तो आस-पास के युवक पड़ोसी उसे इस अवस्था में खिड़की, झरोखे या दीवाल की ओट का सहारा ले देखने के लिए प्रतीक्षा किया करते थे।

श्रीमती चिमांबाई मुसलगाँवकर जाति की दक्षिणी ब्राह्मण हैं। तेरह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह श्री बापूरावजी मुसलगांव से हुआ था। श्री मुसलगांवकरजी की पहली स्त्री का देहान्त हो चुका था और वे निःसन्तान गोलोकवासी हुई थीं। अतएव वंश वृद्धि की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए वे श्रीमती चिमांबाई का पाणिग्रहण कर लाये थे।

श्री बापूरावजी स्वभाव के अत्यन्त विनम्र, मृदुभाषी और सौजन्य-प्रिय थे। वे राज पुरोहित थे और एक सरकारी मन्दिर में नित्य पूजा, आरती-पाठादि करने जाते थे। यद्यपि वे पैंतालीसवाँ पार कर चुके थे लेकिन उनका बदन मजबूत कसा हुआ और कसरती था। उनके बदन की गठन, मछलियों की तड़प-सी उभरती थी। कद के वे ठिगने थे अतएव उनका कसरती शरीर उन्हें और अधिक श्रीसम्पन्न बनाता था। लेकिन जिस समय श्रीमती चिमांबाई ने यौवन-काल में प्रवेश किया, यानी चौदहवीं

पार कर पन्द्रहवीं में प्रवेश किया, उसी समय श्री बापूराव मुसलगांवकर पचास की लम्बाई को स्पर्श करने लगे थे और चिमांबाई को अपना "वर्तमान" कुछ अधिक प्रीतिकर नहीं लग रहा था। उनके अन्दर जवानी की सिरहन, कोमल कल्पनाएं जन्म लेने लगी थीं लेकिन अपने यर्थाथ से टकरा कर वे हवा के साथ बनते धूल के आवृत-सी क्षण में बिगड़ जाती थीं।

श्री बापूरावजी मुसलगांवकर भंग का अंटा चढ़ा कर जब रसिक नेत्रों से श्रीमती चिमांबाई की ओर देखते थे उस समय भी उन्हें कोई आनंद प्राप्त नहीं होता था और न वे उस समय भी अपने मन की सिरहन और कल्पना की सार्थकता को अनुभव कर पाती थीं जब मुसलगांवकरजी आवेग में उसे अंक में बखूबी भर कर कहते थे—

"माझी चिमां!"

श्रीमुसलगांवकरजी के सक्रिय स्नेह-दान ने शीघ्र ही चिमांबाई को मां बनने के लिये बाध्य किया और वे पन्द्रहवीं की सीढ़ियां उतरते-उतरते मां बन गईं।

मुसलगांवकरजी का अथक परिश्रम और अभिलाषा पूर्ण हुई—वे अपनी मनो-कामना को इतने शीघ्र पूर्ण होते देख कर उल्लास और हर्ष से परिप्लावित हो उठे—उनके मन की वर्षों से मुकलित कली बिहंस उठी और उनका स्नेह चिमांबाई पर इस कारण और प्रगाढ़ हो गया क्योंकि उन्होंने "मुसलगांवकर वंश" की वृद्धि करने वाला पुत्र रत्न दिया था। लेकिन चिमांबाई मुसलगांवकर को अपने पति के इस प्रगाढ़ प्रेम और पुत्र-रत्न की

प्राप्ति में विशेष-सुख प्राप्त नहीं हुआ–जिस अभाव और जिस कसक को उन्होंने यौवन में पदार्पण करते समय अनुभव किया था, वह अभी तक वैसा ही उनके अन्दर व्याप्त था। अपने मन के इस अभाव को लेकर ही वे हमारे मुहल्ले में आई थीं। उन्होंने आरम्भ में पंडित दत्तू जमखंडीकर के मकान में एक हिस्सा किराये पर लिया। चूंकि मुसलगांवकरजी का अधिकतर समय सरकारी मन्दिर में पूजा-पाठ कराने में व्यतीत होता था; और श्रीमती चिमांबाई को अधिकांश समय अकेले काटना पड़ता था अतएव मुसलगांवकर जी ने इस साझे के घर में रहना स्वीकर कर लिया।

पंडित दत्तू जमखंडीकरजी अपने प्रबल प्रताप, अपनी उर्वरा कल्पना और लोह-देहायष्टि के कारण मुहल्ले में 'महाबली' का पद प्राप्त कर चुके थे। अतएव उन्होंने अपने अनुर्व नेत्रों से श्रीमती चिमांबाई की ओर देखा और घर में आधा मकान श्री मुसलगांवकरजी को उठाना स्वीकार कर लिया था। मुहल्ले वालों का कहन है कि मकान किराये पर उठाने में महाबली पंडित दत्तू जमखंडीकरजी को रुपयों का मोह शून्य किन्तु चिमांबाई के यौवन-काल को सार्थक बनाने की अभिलाषा प्रबल थी। धीरे-धीरे मुसलगांवकरजी में और जमखंडीकरजी में घनिष्ठता स्थापित हुई। लेकिन जैसा कि लोगों का कहना है, श्रीदत्तू 'महाबली' की इस मैत्री का सूत्र द्रोपदी के चीर-सा अत्यन्त विस्तृत होकर न केवल मुसलगांवकरजी के व्यक्तित्व से ही संयुक्त रहा बल्कि बढ़ कर श्रीमती चिमांबाई की स्नेह दृष्टि को मकड़ी के जाले में बंधी मक्खी-सा बांधने लगा। इसी बीच एक दुःखान्त घटना घटी। श्री मुसलगांवकरजी का वंश–सूर्य, नवजात-पुत्र मृत्यु, की बदली के बीच तिरोहित हो गया। श्री मुसलगांवकरजी शोकातुर हो

उठे। उनकी आँखों के सामने अन्धेरा घना हो गया। और उनकी उमंगों और अभिलाषाओं का अकाल ही अन्त हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका पौरुष थक चुका है और प्रेरणा, पके-सूखे पत्ते-सी खड़खड़ा रही है। अपने जीवन में प्रथम बार उन्होंने अनुभव कि बुढ़ापा उनके सिर पर आ-सवार हुआ है और उनकी कल्पना और भावना का स्वप्निल संसार उनके भीषण तिरस्कार का कारण बन गया है। इधर श्री मुसलगांवकरजी का दारुण दुःख, उनके लिये दुस्सह हुआ और चिमांबाई के अन्दर यौवन का उभार-ज्वार-भाटे-सा उठा। पुत्र-शोक उनके लिये असह्य न बन सका। वे एक लम्बी सांस लेकर अतीत से और आगे बढ़ गयीं।

एक दिन महाबली दत्तू भय्या जमखंडीकर ने मुसलगांवकरजी के पास आकर अपनी तेज उस्तरे से चिकनी की हुई खोपड़ी के बीच में धर्म-ध्वज-सी लहराती चोटी पर हाथ फेरते हुए कहा—

"मुसलगांवकरजी शिव......शिव......शिव...बम्! आप ज्ञानवान पुरुष होकर इस प्रकार शोकाकुल होते हैं। एक 'गण' (पुत्र का नाम) शिवपुरी गया तो क्या, हम तो आपकी सहायता के लिये जो उपस्थित हैं। जटाशंकर ने चाहा तो अबकी आपको पुन: पुत्ररत्न प्राप्त होगा जो आपके वंश को उजवल करेगा।"

दूसरे ही क्षण उन्होंने जरा तिरछी दृष्टि से पास बैठी चिमाबांई की ओर देखा और मुस्करा कर कहा—

"जीवन का नाम आवागमन है। यह क्रम अमिट है। सृष्टि है इसके साथ-साथ ही यह क्रम है। दोनों का सन्धि-स्थल, बापूरावजी हूं...अं...

प्राप्ति में विशेष-सुख प्राप्त नहीं हुआ—जिस अभाव और जिस कसक को उन्होंने यौवन में पदार्पण करते समय अनुभव किया था, वह अभी तक वैसा ही उनके अन्दर व्याप्त था। अपने मन के इस अभाव को लेकर ही वे हमारे मुहल्ले में आई थीं। उन्होंने आरम्भ में पंडित दत्तू जमखंडीकर के मकान में एक हिस्सा किराये पर लिया। चूंकि मुसलगांवकरजी का अधिकतर समय सरकारी मन्दिर में पूजा-पाठ कराने में व्यतीत होता था; और श्रीमती चिमांबाई को अधिकांश समय अकेले काटना पड़ता था अतएव मुसलगांवकर जी ने इस साझे के घर में रहना स्वीकर कर लिया।

पंडित दत्तू जमखंडीकरजी अपने प्रबल प्रताप, अपनी उर्वरा कल्पना और लोह-देहायष्टि के कारण मुहल्ले में 'महाबली' का पद प्राप्त कर चुके थे। अतएव उन्होंने अपने अनुर्वर नेत्रों से श्रीमती चिमांबाई की ओर देखा और घर में आधा मकान श्री मुसलगांवकरजी को उठाना स्वीकार कर लिया था। मुहल्ले वालों का कहन है कि मकान किराये पर उठाने में महाबली पंडित दत्तू जमखंडीकरजी को रुपयों का मोह शून्य किन्तु चिमांबाई के यौवन-काल को सार्थक बनाने की अभिलाषा प्रबल थी। धीरे-धीरे मुसलगांवकरजी में और जमखंडीकरजी में घनिष्ठता स्थापित हुई। लेकिन जैसा कि लोगों का कहना है, श्रीदत्तू 'महाबली' की इस मैत्री का सूत्र द्रोपदी के चीर-सा अत्यन्त विस्तृत होकर न केवल मुसलगांवकरजी के व्यक्तित्व से ही संयुक्त रहा बल्कि बढ़ कर श्रीमती चिमांबाई की स्नेह दृष्टि को मकड़ी के जाले में बंधी मक्खी-सा बांधने लगा। इसी बीच एक दुःखान्त घटना घटी। श्री मुसलगांवकरजी का वंश—सूर्य, नवजात-पुत्र मृत्यु, की बदली के बीच तिरोहित हो गया। श्री मुसलगांवकरजी शोकातुर हो

उठे। उनकी आँखों के सामने अन्धेरा घना हो गया। और उनकी उमंगों और अभिलाषाओं का अकाल ही अन्त हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका पौरुष थक चुका है और प्रेरणा, पके–सूखे पत्ते–सी खड़खड़ा रही है। अपने जीवन में प्रथम बार उन्होंने अनुभव कि बुढ़ापा उनके सिर पर आ–सवार हुआ है और उनकी कल्पना और भावना का स्वप्निल संसार उनके भीषण तिरस्कार का कारण बन गया है। इधर श्री मुसलगांव-करजी का दारुण दुःख, उनके लिये दुस्सह हुआ और चिमांबाई के अन्दर यौवन का उभार-ज्वार-भाटे-सा उठा। पुत्र-शोक उनके लिये असह्य न बन सका। वे एक लम्बी सांस लेकर अतीत से और आगे बढ़ गयीं।

एक दिन महाबली दत्तू भय्या जमखंडीकर ने मुसलगांवकरजी के पास आकर अपनी तेज उस्तरे से चिकनी की हुई खोपड़ी के बीच में धर्म-ध्वज-सी लहराती चोटी पर हाथ फेरते हुए कहा–

"मुसलगांवकरजी शिव......शिव......शिव...बम्! आप ज्ञानवान पुरुष होकर इस प्रकार शोकाकुल होते हैं। एक 'गण' (पुत्र का नाम) शिवपुरी गया तो क्या, हम तो आपकी सहायता के लिये जो उपस्थित हैं। जटाशंकर ने चाहा तो अबकी आपको पुनः पुत्ररत्न प्राप्त होगा जो आपके वंश को उजवल करेगा।"

दूसरे ही क्षण उन्होंने जरा तिरछी दृष्टि से पास बैठी चिमाबाई की ओर देखा और मुस्करा कर कहा—

"जीवन का नाम आवागमन है। यह क्रम अमिट है। सृष्टि है इसके साथ-साथ ही यह क्रम है। दोनों का सन्धि-स्थल, बापूरावजी हूं...अं...

अ पतो ज्ञानवान शास्त्री हुए न काशी के ! क्या हुआ बतलाइये ?"
और फिर बिना विलम्ब के बोले—

"हुआ ही...हां...ऊं...संयोग ! बिना संयोग के जीवन की पंखुड़ियां अस्तव्यस्त हैं । प्रमाण यहां ही मौजूद है—सामने ! शिव शम्भो की कृपा कि आप को हमारे निकट ले आया—अत्यन्त निकट—आत्मीय बना दिया और कहते—कहते श्री जमखंडीकरजी ने अपनी देहायष्टि पर नजर डाली और आसक्त नेत्रों से चिमांबाई की ओर देखा । उस समय चिमांबाई नेत्रों में हंस रही थीं । उसने वक्र दृष्टिक्षेप कर कहा—

"श्री दत्तू भय्या जी, अब आप ही देखो न, गणया क्या मरा यह आधे हो गये । न खाते हैं, और न......"

कुछ सकुचा कर उसने बात को पूरा किया—

"अब न हंसते—खेलते ही हैं । अरे भगवान दूसरा पुत्र देगा—अभी क्या...अभी क्या ?"

महाबली श्री दत्तू जमखंडीकर ने उसकी बात के समर्थन में कहा—

"अह......ह, चिमांबाई इसे कहते हैं अनुभूतिपूर्ण व्याख्या भविष्य की, वाह...वाह !"

फिर उन्होंने एक झटके के साथ अपनी चोटी में गांठ लगाई और सधे हुए 'नमाजी' की तरह दोनों घुटनों के बल बैठते हुए पुनः कहा—

"बापूरावजी सुना आपने, इसे कहते हैं कुछ...अह...ह ।"

श्री दत्तू जमखंडीकर जब श्रीमती चिमांबाई मुसलगांवकर की जिन्दगी में अत्यन्त निकट आ गये थे उन्हीं दिनों दो दिन के बुखार के बाद ही श्री बापूरावजी मुसलगांवकर परलोक सिधार गये। मुसलगांवकरजी की मृत्यु को लेकर मुहल्ले के लोगों ने श्रीमती चिमांबाई पर अनेक लांछन लगाये—उन्हें पति की सेवा की ओर से लापरवाह कहा। अनेक श्रुतियां इनको बदनाम करने के लिये गढ़ी गई लेकिन यह 'लोकवाद' उन्हें तिल भर भी प्रभावित न कर पाया। और वे वैसी ही 'महाबली' के मकान में बनी रहीं।

महाबली इन दिनों बड़े प्रसन्न दिखते थे। दूधिया, कैसरिया और सन्तरे के रस में भंग छन रही है और दत्तू गुरु जमखंडीकर हैं कि गिलास पर गिलास चढ़ाये चले जा रहे हैं। आंखों में सरूर और शरीर में स्फूर्ति,मन का यह हाल कि बे लगाम छोड़े घोड़े की तरह सरपट दौड़ा चला जा रहा है। चिमांबाई उन दिनों यह कहती नजर आईं—

"जिन्दगी चार दिन की है, जितना हंस सको हंस कर काटो। दिल खोल कर, खेल कर काटो।"

और उनका यह रोमांस तथा मन की मनोरम कल्पनाएँ उस समय तक रंगीन बनी रहीं जब तक श्री दत्तू जमखंडीकरजी की भविष्यवाणी के अनुसार उनके उदर में दूसरे 'गणया' ने स्थान ग्रहण नहीं कर लिया। कहते हैं उन दिनों मुसलगांवकरजी की यह धर्मपत्नी बड़ी व्यग्र दिखाई देती थीं, जब यह दूसरा 'गणया' साक्षात भगवान शंकर का उपद्रवी 'गण' बन कर उनके हृदय की इन्द्रियों को मथ रहा था। एक दिन उन्होंने 'महाबली' को

पास बुलाकर कहा कि यदि यह गण, मानव रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतरित हो गया तो निःसन्देह जो वार्षिक सहायता स्व० बापूराव भुसल-गांवकर की मृत्यु के बाद मिलने लगी है वह इस लोकवाद के प्रबल आक्रमण से खत्म हो जायेगी। अतएव कोई ऐसा मार्गदर्शन 'गुरु' करें कि लाठी भी न टूटे और गणरूपी सर्प, जो निकट भविष्य में ही किलबिलाने लगेगा, नेस्तनाबूद हो जाये। 'महाबली' ने एक बार अपनी चिकनी खोपड़ी पर हाथ फेरा, अनायास उनके विचारों में विकम्पन आया, क्षण भर के लिए वे मौन हो युक्ति अन्वेषण करने लगे कि एक झटके से उन्होंने अपनी खुली हुई चोटी में गांठ लगाई। इधर गांठ पूरी तरह लगी नहीं कि उन्होंने चुटकी बजाई—

"हूँ, चिमांबाई बस वशीकरण मन्त्र की तरह कान में कहने की बात है।"

उन्होंने कान में क्या कहा यह तो पता नहीं लेकिन वास्तव में नीलकंठ का गण पृथ्वी पर अवतरित होते ही, उसकी प्रथम चीख संसार के कानों तक पहुँचने के पूर्व ही भूमिसात् कर दिया गया।

चिमांबाई का वजन हल्का हो गया। पुनः उनकी आंखें बातों और भावों को लेकर कटाक्ष करने लगीं—उनका वक्षस्थल फिर सांसों के उतार-चढ़ाव के साथ नदी की लहरों-सा उठने गिरने लगा। इधर उनकी नसों में जवानी तेजी से दौड़ी और उधर महाबली का प्यार कुछ फीका, कुछ अनाकर्षक-सा दृष्टिगत् होने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि जवानी का

बकाजा श्री दत्तू जमखंडीकर के मांसरहित, आबनूसी, चर्मवेष्ठित, अस्थि-पंजर से पूर्ण न होगा। भले ही वे लोह–वर्ण और लोह-सम रहें। उनकी कल्पना किसी ऐसे युवक हृदय को स्नेह दान करने की थी, जो उन्हें अंक में भर कर गुदगुदाये--उन्हें एक बंधे हुए जीवन-क्रम से निकाल कर युगीन प्रेमी और प्रेमिकाओं की तरह ब.ग और सिनेमा की सैर कराये—उनकी कल्पना की डोर में भावना के सुमन पिरोये। अभी तक प्रेम-उपवन में सैर करते-करते उनकी दैहिक-भूख भले ही तृप्त हो गई हो लेकिन मन तो अभी भी भूखे भिखारी की तरह हा-हाकार कर रहा था।

इधर चिमांबाई के अन्दर महाबली के प्रति यह भाव–बीज उपजा और उधर दत्तू जमखंडीकरजी अपने 'अर्थ' का सम्पूर्ण जोर लगा कर चिमांब ई को अपने वैभव से आकृष्ट करने के लिये द्राविड़ी प्राणायाम–करने लगे। नित्य सैर और बिला नागा चाय-पान! मंडली जुड़ी हुई है और बादाम, पिस्तों के साथ हरी कंच भंग में रगड़े लग रहे हैं—चाय की केतली है कि चूल्हे पर से नीचे उतरने का नाम ही नहीं लेती–चीनी की तश्तरियां ठनक रही हैं और पुरातन ब्राह्मणवाद के आधुनिक प्रतीक दिग्गज, त्रिपुन्डधारी चितपावन ब्राह्मण, कुलीन महा-मानव अपनी चोटियों में गाँठें लगा रहे हैं। और 'हरिओम...ब...ब...ब...बम भोले' उच्चारण से पृथ्वी और आकाश को कम्पायमान कर रहे हैं। किसी ने धोती की 'लाँग' कसते हुए कहा—

"वाह गुरु क्या बात है? पेशवा बाजीराव के साधन-सम्पन्न महामन्त्री...क्या नाम उनका, नाना फड़नवीस, बस बस कूटनीतिज्ञ हुए न तुम उनके बरोबर।"

ब्राह्मण श्री मंगल प्रसाद पांड़े आगये । गौरवर्ण, शुक नासिका, बायीं आंख कुछ ढरती हुई, मूछें औष्ट-प्रदेश से मिलीं, कटी-छटी। कंधों से कमर तक झूलता जनेऊ काफी लम्बाई लिये हुए; लेकिन इकहरे बदन के ! चूंकि अब तक आप पैंतीसवाँ पार करने पर भी विधुर और निरा एकाकी जीवन व्यतीत करते चले आ रहे थे अतएव आप जीवन को नीरस, सूना और खलने वाला, अप्रिय अनुभव करते थे। जब से आपने सम्पर्क श्रीमती चिमांबाई मुसलगांवकर से स्थापित किया,दिन ऐसे लगने लगे जैसे छोटे बच्चे के हाथों से गैस भरा गुब्बारा छूट कर पल भर में आकाश-गमन करने लगा हो और जीवन, सुमधुर फलों से लदे पेड़ों, सुवासित, सुन्दर फूलों के गुच्छों से झुकी हुई टहनियों और कला पूर्ण, खुशनुमां क्यारियों से परिवेष्ठित बगिया बन गई हो। लेकिन श्रीमती चिमांबाई श्री मंगलप्रसादजी को अपना स्थायी अन्तरंग मित्र न बना सकीं—एक दुराव वे सदैव अपने मन में चिन्हित किये रहीं। सजातीय के साथ जिस प्रकार खुल कर उनका रोमांस किलकिला उठता उसके दर्शन इस बार नहीं हुए। व्यवहार की बात दूसरी, लेकिन जिसे कहते हैं 'आत्मीयता' वह श्री मंगलप्रसादजी के हिस्से में नहीं पड़ी।

हां, यहां श्री बालकृष्ण (बालू) शिरढोणकरजी का जिक्र किये बिना चिमांबाई की जिन्दगी का चित्रण एकांगी और अधूरा ही रह जायेगा। श्री-बालकृष्ण शिरढोणकरजी उर्फ बालू गुरू—मझोला कद, आंखें बड़ी-बड़ी, दाढ़ी-मूंछ साफ;यानी क्लीन-शेवड, दाहिना हाथ मुड़ा हुआ—विचित्र! शरीर-दोहरा,गठन मामूली, सिर घुटा हुआ और बीच में चँदोबा—आकार की किसी

देवी—देवावओं की मठिया पर फहराती झंडी—सी चुटिया! यदि यह कहा जाये कि श्री बालू गुरू शिरढोणकरजी पुरातन दक्षिण भारत और आधुनिक पूर्वी-भारत की संस्कृति तथा बेश—भूषा के सन्धिस्थल हैं तो अनुचित न होगा; क्योंकि दक्षिण भारत में, अर्थात पूणें या उसके आस—पास के प्रदेश में उनके पितामह वास करते होंगे और उन्हें सपिता वास करना पड़ा है पूर्वी भारत में! अतएव यह संस्कृति का समिश्रण स्वाभाविक ही है। तो यह बालू गुरू बड़े विचित्र बांके वाके हुए हैं। उनका अपनी योजनाओं के कारण विगत अत्यन्त वैभवपूर्ण और उज्जवल रहा है। और यौवन में प्रवेश करते—करते उनका संयोग से मिलन चिमांबाई मुसलगांवकर से हो गया। इनके लिये बचपन में में घर के ताले तोड़ देना एक साधारण बच्चों—सा खेल, दूसरे की घांस की गंजियों में आग लगा देना, सफाई से किसी के घर से चीज पार कर देना; मात्र कौतुक! और अब जवानी में, बस क्या कहने हैं कि बे—पर के कभी आसमान और कभी......!

तो श्री बालूगुरू सर्वगुण सम्पन्न, सर्वतोमुखी प्रतिभावान तो निःसन्देह हैं ही लेकिन साथ—साथ उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि वे एक सच्चे प्रेमी और व्यवहार—कुशल व्यक्ति भी हैं। मुहल्ले वालों को, विशेष कर श्रीमती मुसलगांवकर के अन्य शुभचिन्तकों को यह भय हरदम रहने लगा है कि कहीं श्रीमतीजी श्री बालूगुरू को लेकर अपने जीवन में रोमांस तथा प्रेम की अनुपम रागनियों के आगे पूर्ण विराम न लगा बैठें।

गत छै वर्षों से जब बालकृष्ण शिरढोणकरजी उर्फ बालूगुरू ने उनके जीवन में प्रवेश किया दो बार काल भैरव, नीलकंठ भगवान शंकर के 'गण' से अभयदान प्राप्त करने उन्हें मेटरनिटी होम के संरक्षण में जाने

और सफलतापूर्वक खाली हाथों लौट कर श्री बालूगुरु द्वारा उनके मन और उनकी कल्पना में गुदगुदी उत्पन्न करने से लाभान्वित होने की इच्छा लिये, सीधे उनकी शरण में चला आना पड़ा है । और उन्होंने अत्यन्त कृपावन्त होकर उनको मन वांछित वरदान भी दिया है। यद्यपि श्रीमतीजी की आर्थिक स्थित अब वर्षा के बाद छितराये हुए छप्पर-सी है. जिसके फूस-कण बिखर गये हों और वह अधिक टिकाउ न होने की सूचना दे रहा है। लेकिन इस अड़तीस वर्ष के जीवन में अब वे भी श्री बालू गुरु को लेकर दैहिक और मानसिक भूख की तृप्ति के साथ-साथ सन्तोश भी अनुभव करने लगी हैं। उनके सिर में एक-दो सफेद बाल यदाकदा इस बात की पुष्टि करने लगे हैं कि उनका रोमांस थक चला है। कल्पना, जहाज के पंछी की तरह लौट-लौट कर विश्राम के लिये मन के नीड़ में दुबक कर रहना चाहती है। और एक लम्बे काल तक किसी शरारती लड़के के द्वारा निरन्तर गेंद उछालते रहने-सा यह शरीर भी अब कुछ स्थायी, क्रम-बद्ध जीवन व्यतीत करना चाहता है।

————×———×———×———×————

श्रीमती चिमांबाई मुसलगांवकर, अपने विगत जीवन पर चारपाई पर लेटी दृष्टिक्षेप कर रही थीं, शुक्लपक्ष का यौवन सम्पन्न चन्द्रमा उनके सिर पर ज्योत्स्ना छिटका रहा था—हवा में कुछ शिथिलता आ गई थी। उन्होंने इस विचार-वीथि से निकल कर किया—"ऊंह......"

और सिर के नीचे लगे तकिये को जांघों के बीच दबा कर करवट लेली—

सम्भवत: कल्पना उस समय भी उनके जीवन के नक्शे में रंग भरने लगी थी।

———

कॉमरेड

सड़क पर साथ-साथ चलते साथी का ध्यान हमने अपने आगे चलने वाले व्यक्ति की ओर उंगली से संकेत कर के आकृष्ट किया, और साथी ने मस्ती-भरी चाल से आगे जाने वाले व्यक्ति की ओर देखा और चिल्ला कर पुकारा:—

"कॉमरेड !"

वे ठिठक गये, रुक गये। पस्ता-क़द, फुटबॉल-सा गोल-मटोल शरीर, नाड़े के अभाव में धोती की तरह खुरसा हुआ पजामा; कुर्ते के आगे के बटन खुले हुए और पौरुष की प्रतीक छाती आधी खुली हुई। सिर नंगा और बाल बारिश के बाद के फूस के छप्पर की तरह छितराये हुए। शरीर के प्रति लापरवाही—सीमा से बाहर—कल्पना से परे! मुँह पान से रचा हुआ और दाँत कुछ चीनियों के-से पीलियापन लिये हुए। यदि पुलिस में कभी उनका हुलिया लिखने की नौबत आयी होगी तो लिखा होगा—कॉमरेड... पस्ता क़द, कोताह गर्दन, पेशानी कुछ अधिक विकसित, मँझोली आँखें—रँग गंदुमी, ओष्ठ-प्रदेश ज़रा विकसित और मोटा! हँसते समय गालों में गड्ढे बना जाते हैं, सिगरेट के अधिक प्रयोग के कारण सीधे हाथ की उँगलियों के पोरे नारंगी पड़ गये हैं। और सबसे अधिक परिचय का चिन्ह उनकी हँसी है, कि जब वे मुक्त अट्टहास करते हैं, कि जब वे प्रमुदित हो कर केवल हँसना प्रारम्भ करते हैं, तो उनकी निर्मल हँसी चन्द्रमा की पूर्ण यौवन-सम्पन्न चाँदनी-सी आस-पास छिटक पड़ती है।

वे हमारे शहर की एक विशेष विभूति हैं। शहर के समस्त राजनीतिक दल उनसे परिचित हैं; समस्त साहित्यिक संस्थाएँ उनसे परिचित हैं; पत्रकार, साहित्यिक, राजनीतिज्ञ, छोटे-बड़े नेता, विद्यार्थी, मिनिस्टर और विशिष्ट नागरिक, सभी उनके मित्र हैं। आज के राजनीतिक वातावरण में 'कॉमरेड' शब्द ही नितान्त भय और आपत्ति का सूचक है, यानी इन साथियों की तोड़-फोड़ की नीति के कारण तथा भय उत्पन्न करने वाली गति-विधि के कारण जो अहिंसक भारत में इनके विरुद्ध वातावरण निर्मित हो गया है, उनसे प्रभावित हो कर लोग इन 'कॉमरेडों' से ठीक वैसे ही बिदकने लगे हैं, जैसे दौड़ते हुए उन्मत्त साँड को देख कर सड़क पर चलती जनता बिदक जाती है। लेकिन यह बात हमारे इन कॉमरेड के साथ नहीं है। कॉंग्रेसी, सोशलिस्ट और सरकारी नौकर-पेशा, सभी उनसे आम सड़क पर मिलते हैं, खुल कर बातचीत करते हैं, विचार-विनिमय करते हैं, और इसका कभी प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता। इस का मतलब यह नहीं कि वे पार्टी-विशेष के सदस्य नहीं हैं, या उनकी भूत, वर्तमान और भविष्य गत् विचार-धारा उन राजनीतिक सिद्धान्तों से संबद्ध नही है। यह सब है, और एक विश्वास के साथ हम कह सकते हैं कि वह रहेगी भी! लेकिन उनका व्यक्तित्व राजनीतिक वातावरण से पंगु नहीं हो पाया है। वह आज भी घात-प्रतिघात या किसी के अहित की भावना से अलग है। वे 'कॉमरेड' हैं, लेकिन वे कभी किसी को हानि नहीं पहुँचा सकते; 'कॉमरेड' हैं, फिर भी वे किसी व्यक्तिगत द्वेष की भावना से ग्रस्त नहीं हैं; 'कॉमरेड' हैं, लेकिन वे लम्बी-चौड़ी दून की

नहीं हाँक सकते । उनका व्यक्तित्व निःस्पृह और निरीह है, इतना कि वे चाहें तो भी चुस्त और चालाक नहीं बन सकते । जिस गति से जीवन एक लय में बहा चला जा रहा है,उसमें त्वरा नहीं दे सकते। और जो लोग उनसे परिचित हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनका जीवन न कभी वेगमय रहा और न है । मानो स्थिर मौसम का शांत सागर है,जिसमें न उद्वेग है और न झंझावातों की सम्भावना है । सामान्य लहरें हैं, एक क्रम है—एक निमियत गति है ।

तो यह 'कॉमरेड' हमारे शहर के जीवन में एक विचित्र जीव वाकै हुए हैं । शासन के अधिकारी या मन्त्रिगण उनकी ओर देखते हैं और मुसकरा देते हैं । उनकी इस मुसकान में तीखा व्यंग्य इस बात का होता है कि तुम हमें नुक़सान नहीं पहुँचा सकते—तुम हमारे मार्ग में नहीं आ सकते—तुम राजनीतिक षड्यन्त्र रच कर शासन-सूत्र को अस्त-व्यस्त करने की कल्पना भी नहीं कर सकते । तुम राजनीतिक वाद-विवाद के लिए, विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक अच्छी शग़ल हो । वे उन्हें देख कर मुसकराते हैं—और वे उन्हें देख कर मुक्त अट्टहास करते हैं । केवल बात इतनी ही नहीं कि शासन ही उन्हें 'इतना भला' समझता है, बल्कि हमारे शहर के पूँजीपति भी उन्हें इतना ही सदय और दयामय, स्वभाव से शान्त और हितकर मानते हैं । यह बात सही है कि हमारे अन्य कॉमरेडों की तरह 'पूँजी' और 'विषमता' की बात को ले कर वे बात-चीत में आवेग-पूर्ण हो जाते हैं । लेकिन भाषा और विचारों के साथ-साथ जो निरीहता और कोमलता उन्होंने प्रकृति से पायी है, वह उन्हें निष्क्रिय कर देती है । वे तेज़ी से, वेग से और ओज से बात करते हैं और उनके शरीर के अवयव थरथराने

लगते हैं। उनका शरीर और की मुद्राएँ उनकी वाणी के वेग का साथ नहीं दे पातीं। उन क्षणों में अक्सर हमने देखा है कि सामने बैठे कोई सज्जन, जिनसे वे अभी–अभी वाद–विवाद कर रहे थे–जिनसे वे राजनीति जैसे गहन विषय पर वार्तालाप कर रहे थे, उन्हें मखौल समझने लगे हैं। एक बार वे 'कॉमारेड' की ओर कृत्रिम गम्भीरता से देखते हैं, और मुद्राओं को पीपल के सूखे पत्ते–सी दोलित उनकी काया को देखने लगते हैं। 'कॉमरेड' की तेजस्विता, वेग और ओजमय वाणी के साथ–साथ एक मिठास–सी उनके अन्दर भरती है। जैसे क्लान्त, प्यासे व्यक्ति ने जे. बी. मंघाराम द्वारा निर्मित लेमनजूस की गोली मुँह में डाल ली हो, और उसका मीठा रस गले के नीचे उतर कर उसको प्रेरणा और स्फूर्ति देने लगा हो।

हाँ साहब, तो हमारे यह 'कॉमरेड' माने हुए विचित्र जीव हैं। उनकी हर अदा में शोखी, हरेक हरकत में मस्ती है। और हमारा दावा है कि आप किसी भी परिस्थिति में क्यों न हों–यानी आप चाँदी और सोने के सट्टे में बड़ा से बड़ा टोटा उठा कर क्यों न आये हों, जीवन आपको मरूस्थल–सा वीरान, नीरस और अनुपयोगी क्यों न दीखने लगा हो–लेकिन ऐसी परिस्थितियों और इन विषम तथा जीवन के निर्णायक क्षणों में भी यदि यह मित्र 'कॉमरेड' आपको मिल गये तो इस बात पर आप विश्वास कीजिये कि हार के कारण हीनता का, विराग का और असहनीय दुःख का जो प्रभाव आपके सोचने की गति पर पड़ गया है, जिसने कि आपके सोचने की गति को हताहत कर दिया है, वह अवस्था आपकी दूर हो जाएगी। आप देखेंगे कि एक मनुष्य है जो आपकी तरह 'सर्वहारा' है, जो स्वयं से भी घृणा करता है। और फिर भी अपनी मस्ती में रमा रहता है।

जो कि दुनिया के उतार-चढ़ाव की ओर देखता है और हँस देता है । नेताओं को, पूँजीपतियों को बनते-बिगड़ते देखता है और सिर्फ मुसकरा देता है । '[illegible]कूट' से जब कभी 'कॉमरेड' को देखा गया है तो सभी को आश्चर्य,भय और उत्सुकता हुई है । और सभी ने माना है कि सन्त कबीर ने जो शब्द 'फ़ानी' दुनिया के लिए प्रयोग कर गये है, उसका यदि यथार्थ में अभिप्राय समझा है तो इस व्यक्ति ने समझा है । रीति-काल के कवियों ने जो नश्वरवाद का प्रचार मनुष्य को लोभ और मोह से परे रखने के लिए किया, तो उसका गद्य में विधयक नहीं, बल्कि सजीव आकार में कोई प्रतीक आ कर देखे ! और साहब हमने देखा है कि उनकी इस मस्ती-भरी दुनिया तया सांसारिक आकर्षणों के प्रति अवहेलना और केवल अपने विश्वासों के प्रति दृढ रहने की भावना को देख कर; हम जैसे सांसारिक जीवों को ईर्ष्या होती है । एक भावना हमारे मानस पर तेल के पर्त-सी तिर जाती है कि काश यह मस्ती, यह उन्मुक्त अट्टहास और जीवन को इस लापरवाही से देखने की शक्ति हमें भी प्राप्त हुई होती । और उस समय अनायास हमारे मुँह से दीर्घ उसाँस निकल जाती है ।

हम मानते हैं कि यह सेक्स-प्रधान युग है । यानी आज-काल लोगों की यौवन के प्रति अमित लालसा है । यह यौवन जब किसी बाला के नेत्रों में मादकता उँडेल देता है और किसी नवयुवती के शरीर पर आम्र-बौर-सा छा जाता है, तो आस-पास के नवयुवकों की समस्त भावनाओं का उस एक केन्द्र-बिन्दु पर टिक जाना स्वाभाविक है । लेकिन संसार के इस सबसे बड़े आकर्षण-यौवन की चुम्बक-शक्ति के प्रति भी हमारे 'कॉमरेड' को कोई आसक्ति नहीं है । सेक्स-सम्बन्धी रचनाओं को उन्होंने

पढ़ा है—'फ्रायड' की पुस्तकों का ज्ञान उन्होंने अवश्य प्राप्त किया है। लेकिन उनसे प्रेरणा लेकर, उससे प्रभावित हो कर उन्होंने कभी प्रेम, रोमांस या या वासना के क्षेत्र में पदार्पण करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। हमने कहा न, उनके जीवन में रोमांस के लिए कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि जीवन की माध्यमिक अवस्था, चालीस के पास पहुँच जाने पर भी वे विवाह द्वारा नथ नहीं पाये हैं। आज भी उस शहरी अलमस्त साँड की तरह हैं जो दिन भर भ्रमण—वृत्ति में रमाँ रहता है और थक जाने पर जहाँ ठौर पाता है, वहीं विश्राम करने लगता है। 'कॉमरेड' के मित्रों का सदैव यह प्रयास रहा है कि कॉमरेड अपनी इस असीमित मस्ती को त्याग दें, विवाह करें और घर बसाएँ। लेकिन अभी तक के उनके सारे प्रयास निष्फल ही गये हैं। किसी ने कहा—

"भाई विवाह कर डालो—काम खोज देते हैं।"

और उन्होंने चिर—परिचित उन्मुक्त अट्टहास किया—ऐसा कि 'बात' भी पाँखें फड़फड़ाये हुए कबूतर की तरह बिखर गयी। और उस व्यक्ति को दूसरी बार विवाह की बात करना ही अशोभन प्रतीत हुआ।

एक दिन की बात है कि शहर के राज—पथ के एक प्रसिद्ध होटल के सामने पड़ी एक बेंच पर वे बैठे हुए थे। उन्होंने दूर से हमें देखा, और हमने देखा कि एक विशेष मुद्रा अंकित हुआ उनका हाथ ऊपर उठा और वे किसी हद तक अपने स्वाभाविक स्वर से ऊपर के स्वर में 'हल्लो' चिल्ला उठे। इस 'हल्लो' से हम अच्छी तरह परिचित हैं। जब 'हल्लो' कहा गया तो कॉमरेड का अभिप्राय है आप स्वस्थ और सानन्द तो हैं। हम सड़क पर साइकिल से उतर कर उनके पास आये कि वे बोले—

"आओ बैठो ।"

हम आवश्यक कार्य से जा अवश्य रहे थे। लेकिन उनकी सहृदयता, उनकी व्यवहारिकता, कुशल-मंगल पूछने की भावना की अवहेलना न कर सके । बैठ गये । वे थे और एक श्वेत वस्त्र-धारी सज्जन और थे । दोनों में शारीरिक होड़ थी । एक सेर थे, तो दूसरे सवा सेर । उन्होंने हमारी ओर मुड़ कर देखा और दोहराया:—

"हलो"!

हमने विनम्रता से सिर झुका कर कहा—

"आपकी कृपा है ।"

इसके आगे वे हमसे और कुछ पूछें कि होटल के वृद्ध स्वामी ने धर दबाया । वे हमसे बोले—

"अरे साहब, बिल्कुल आवारा है यह; अनेक बार इससे कहा कि शादी करो और घर बसाओ । लेकिन यह है कि कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती ।"

हमने एक बार मुसकरा कर होटल के मालिक की ओर देखा और पुन: जोर के साथ कहा—

"इनकी शादी में हजार रुपये मैं लगा दूँगा। पैसे की चिन्ता नहीं, लेकिन विवाह.........."

कॉमरेड ने फिर क़हक़हा लगाया, क़हक़हा, फिर क़हक़हा ! जैसे शादी का कुहाँसा जो भावना के आकाश को आच्छन्न करता जा रहा

है, उसे इस अट्टहास की प्रखर–रश्मियों से वे विच्छिन्न कर देना चाहते हैं। इस बार श्वेत वस्त्र–धारी नेता महोदय ने भी बातचीत में योग दिया। बोले—

"तुम्हारी शादी में एक शानदार पार्टी हमारी ओर से।"

लेकिन कॉमरेड हास्य के भाष्य की चरम–सीमा पर थे। वे फिर हँसे:— "शादी!"

और फिर अट्टहास:—

"किसी लड़की से शादी!"

और फिर मुक्त क़हक़हा—"ख़ूब—ख़ूब मज़े की बात है!"

और 'मज़े की बात है' कहते–कहते उन्होंने किसी पोखर से अपनी पिपासा शांत कर उड़ने वाले नभचर की भाँति अपने बाहुओं की पाँखें इस जोर से–इस वेग से और इस उन्माद से–फैला दीं कि दुर्बल, क्षीण-काय 'हम' और श्वेत वस्त्र–धारी वे नेता, दोनों कराह उठे–तिलमिला उठे। कॉमरेड का अट्टहास प्रवाहमान था।

तो साहब, यह कॉमरेड हमारे शहर में दर्शनीय जीव हैं। हमारे शहर में आप आएं और प्रमुख राज पथ के होटल, सड़क, रेस्तराँ, कॉलेज, हॉस्टेल के कमरों, हाईकोर्ट आदि स्थानों पर हमारे ऊपर विवरण के किसी इन्सान को देखें तो अविलम्ब आप उन्हें पहचान लेंगे। और हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि आप उन क्षणों में उनकी मस्ती से, बातचीत की रवानगी से, उनके सौजन्य से प्रभावित हुए बिना न रहेंगे। यदि आपने

आत्मीयता में गहरा रंग भरना आरंभ कर दिया और चाहा कि उनका विशेष परिचय प्राप्त हो जाए, तो वे पद्य में नहीं, अपितु गद्य में अवश्य इन पंक्तियों का भाष्य कर के कहेंगे:—

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले;
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जिधर चले।

पम्पम भय्या

कभी-कभी टोली-मोहल्ले में कुछ ऐसी हस्तियाँ निकल आती हैं, जिनके साथ उस मोहल्ले की गाथाओं का इतिहास जुड़ जाता है।

उस इतिहास की पुनरावृत्ति समय-समय पर हुआ करती है जिससे मोहल्ले के बीच एक ज़िन्दगी बनी रहती है। कुछ लोग ऐसी हस्तियों के बल-पराक्रम पर हँस देते हैं। कुछ उनकी खिल्ली उड़ाने में बहुमूल्य समय बिता देते हैं। कुछ उन्हें मनोविनोद का एक अंग बना लेते हैं और अपना जी बहलाते हैं।

लेकिन मैं अपने मोहल्ले की कुछ विभूतियों को लेकर उन पर हँस नहीं पाता--उनके पराक्रम की—उनकी अनहोनी सूझों के प्रति आस्था और उसे क्रियान्वित करने के अतुल सम्बल का मज़ाक नहीं बना पाता। मैं उनका, आप माने या न माने मनन करने का यत्न करता हूँ और किसी गाँव के खँडहर में दबी हुई किसी कलापूर्ण पुरातन मूर्ति की भाँति—एक पुरातत्व वेत्ता की तरह श्रम कर के, प्रचलित किंवदन्तियों का सहारा लेकर उनका जीवन-क्रम लिपिबद्ध करने की चेष्टा करता हूँ।

आज कल हमारे मुहल्ले में सब से अधिक सक्रिय, चेतन-शक्ति श्री पम्पम भय्या हैं—यह उनका वास्तविक नाम नहीं, यह तो 'उपनाम' है। जो उनके जीवन के साथ संयुक्त हो गया है। और ठीक वैसे ही; जैसे किसी

लेखक या कवि के साथ, बावजूद उसके सीधे-सादे नाम के-'त्रिशंकु','चन्द्र', 'एकलव्य', 'त्यागी' या 'बैरागी' की तरह ज़िन्दगी के दामन से चाँद की चाँदनी-सा या सूर्य की प्रखर रश्मियों-सा चिपक जाये। हाँ,तो वैसे ही इस महान विभूति का नाम है पुरुषोत्तम विनायक चिपलूनकर ! लेकिन जिस तरह अपने अन्य महान कार्यों में उन्होंने लघुता को अपना कर महानता प्राप्त की है, उसी तरह इस अत्यन्त वैभवपूर्ण नाम को छोड़ कर सिर्फ 'पम्पम भय्या' संज्ञा को ज़िन्दगी का बोधक बना लिया है।

मुहल्ले-टोले, बाज़ार-घर या जिधर भी वे निकल जाते हैं केवल 'पम्पम भय्या' के नाम से पुकारे जाते हैं। उनके इस नाम की प्रसिद्धि का प्रताप इतना विस्तृत और तेज़ है कि 'पुरुषोत्ताम विनायक चिपलूनकर' को अपने अस्तित्व को बचाने के लिये एक उल्लू की तरह, दिन के प्रकाश से भयभीत हो कर किसी तिमराच्छन्नी गुफा या किसी ध्वस्त पुरानी हवेली के एकाकी, नीरव और गोपनीय स्थान का सहारा लेना पड़ा है।

वे सिर्फ 'पम्पम भय्या' और केवल पम्पम भय्या ही रह गये हैं। मुहल्ले के, गुल्ली-डंडा खेलते या कोड़ियों की गलझप्प उड़ाते, किसी छोटे बच्चे ने उन्हें देखा और हँस कर आवाज़ दी ''पम्पम भय्या'' ! मोहल्ले की किसी नौजवान स्त्री ने छत पर धूप में बाल सुखाते हुए यदि कहीं उनकी ओर देखा तो मुस्कुराई, फिर धीरे से अपने अधरों में फुसफुसाहट की-'पम्पमभय्या'। किसी वृद्ध ने अपनी लकड़ी के सहारे अपने शरीर का बोझ सम्हाले रास्ता पार करते कहीं पम्पम भय्या को देख लिया, तो एक मिनट के लिये रुके, फिर हँस कर कहा 'पम्पम भय्या' ! किसी युवक ने

अपने अध्ययन से ऊब कर कहीं घर की छत पर टहलते हुए पम्पम भय्या को अपनी छत के किसी कोने पर बैठे और अनिमेष दृष्टि से किसी एक ओर देखते पाया कि उसका निरन्तर बारिश से आलस्य और मनहूसियत के दिन-सा आम्लान मन, मेघों की कालिमा को चीरता और सूर्य की किरणों से दीप्त दिन-सा हो उठा, एक ताज़गी उसने अपने में अनुभव की और वहीं से उसने आवाज़ लगायी—'पम्पम भय्या' !

यानी श्री पम्पम भय्या हमारे मोहल्ले के बच्चे और बूढ़े, नवयुवक और नवयुवतियों की ज़ुबान पर रमें हैं। बस उन पर दृष्टि पड़ने भर की देर है कि रामनाम की धुन-सा उनके नाम का जाप आरम्भ हो जाता है।

वे हमारे मोहल्ले के जीवन हैं—एक गति हैं। जैसे ख़ून का दौर एक गति से जिस्म के अन्दर होता रहता है उसी तरह श्री पम्पम भय्या हरेक मोहल्ले-वासी की ज़िन्दगी में,उसके अपने स्वभाव के अनुसार अतिरेक या अत्यन्त सूक्ष्म रूप में एक गति, एक क्रम बने रहते हैं।

हमारे मोहल्ले की यह ख्याति प्राप्त विभूति जीवन में एक नवीन दृष्टिकोण और विचारों की गरिमा लेकर अवतरित हुई है। पस्ता क़द और गठे हुए शरीर पर जो आपके सिर की आकृति है, वह अत्यन्त विचित्र है। सिर के आगे का हिस्सा अ-धर रखे हुए मकान-सा आगे को निकल आया है और पीछे की ओर मुग़ल-कालीन किसी इमारत के गुम्बज़-सा गोल हो गया है। उनके सिर के बाल सदैव उस्तरे से छिले हुए और बीच में एक बालों का गोलाकार तथा उसके बीच में रस्सी-सी बटी

हुई चुटिया जो साधू के डेरे पर धर्म–ध्वज–सी लहराती रहती है,को छोड़ कर बाक़ी भाग चिकना और अनावृष्टि से नष्ट हुए खेत–सा साफ़ रहता है। उनके बदन का अंग वर्तमान युग के सवर्ग आर्यों–सा गेहूंआ और हॉकी के खिलाड़ी–सा चपल है। जब वे अपनी छत पर पद्मासन मार कर बैठ जाते हैं उस समय उनका शरीर अत्यधिक सक्रिय होकर और आँखें चंचल हो कर इधर और उधर की छतों पर सौन्दर्य का माधुर्य पीने के लिये तृष्णातुर मृग–सी झाँकने लगती हैं। उस समय वे किसी युवती को बरामदे पर किसी काम से आया हुआ देख कर परमानन्द प्राप्त कर लेते हैं। छिप कर वे उसकी ओर देखेंगे और फिर अपने आसन पर अधिक दृढ़ता से आरूढ़ हो ध्वनि स्फ़ारित करेंगे—'हरि-ओम...हरे...हरे' और उनकी यह ध्वनि पंचम से सप्तम् तक उस समय तक उठती रहती है, जब तक युवती एक बार उनकी ओर देख न ले और वे अपनी आँखों में अमित लालसा भर कर उसकी ओर देख न लें। उस समय अनायास श्री पम्पम भय्या का हाथ उनकी लम्बी चोटी पर चला जायेगा। उसमें गाँठ लगाते हुए एक बार वे पुनः गुरु गम्भीर स्वर में दुहराते हैं 'हरि ओम्'। युवती हंस कर, मुस्करा कर कुछ तुनक कर, कुछ क्रोधित हो कर उनकी इस हरकत की ओर देखेगी और छत से सिकुड़ती, सिमटती या इन्हें मचलाने के ख़्याल से चपला–सी चपल चाल में उनकी 'कु' या 'सु' दृष्टि से लोप हो जायगी।

पम्पम भय्या अपने जीवन का चालीसवाँ वर्ष पार रहे हैं, लेकिन रसिकता अभी उन में परिपूर्ण हैं। वे अपनी इस रसिक वृति लेकर कॉलेज के किसी भी प्रेमी को मात दे सकते हैं। हम दावे के साथ कहते हैं कि जहां

ॉलेज का कोई भी नवयुवक जहाँ अपनी अनुभवहीनता के कारण अपनी
मिका को वशीभूत करने में असमर्थ रहेगा और उसका प्रदर्शन एक मखौल-सा
ाद्ध हो जायेगा, वहाँ श्री पम्पम भय्या अपने अनुभवों के आधार पर कोई
सा रास्ता निकाल दिखायेंगे कि दातों तले अँगुली दबा कर रह
ाना पड़ेगा।

अभी कुछ दिनों की बात है। हमारे मोहल्ले में श्रीमती बाबूराव
ाङ्गाजी पन्त मूचरीकर अपने सौभाग्य से खण्डित हुईं। उठती जवानी और
ाहाड़—सा यह बोझा! एक दिन श्री पम्पम भय्या को श्रीमतीजी के इस
ु:ख का पता लगा और उसी दिन वे श्रीमती मूचरीकर के घर पधारे—आंखों
ें संवेदना और जुबान पर करूणा, हृदय में पर—दुःख कातरता का हिलोरें
ारता सागर! दुःख और सहानुभूति की प्रति मूर्ति बने हुए। दूसरे ही दिन
ाश्चर्य से मोहल्ले के लोगों ने देखा श्रीमती मूचरीकर हँसने लगी हैं—बातों को
ेकर आँखों में मुस्कराती हैं और पम्पम भय्या की वे इसलिये अत्यन्त कृतज्ञ
हैं कि उन्होंने उनके जीवन के आकाश पर छाये हुए कुहाँसे को हटा दिया
है और जीवन को पुन: ताज़े फूलों की सुगन्धि से भर दिया है।

उन दिनों पम्पम भय्या के सम्बन्ध में यह सुनने में आया कि
वे श्रीमती मूचरीकर को लेकर जीवन की रसिकता के आगे पूर्ण विराम
लगा देंगे। सुबह से शाम तक वे श्रीमती मूचरीकर के घर पर मौजूद
हैं—कभी बाज़ार से उनके लिये दैनिक आवश्यक सामान ला रहे हैं और
कभी श्रीमती मूचरीकर उनके लिये चाय तैयार कर रही हैं। दोपहर
को श्री पम्पम भय्या अपनी अद्भुत सम्मोहन शक्ति को लिये विश्राम कर

रहे हैं और श्रीमती मूचरीकर उन पर पंखा झल रही हैं। शाम को श्री पम्पम भय्या भाँग पीस रहे हैं और श्रीमती मूचरीकर भाँग में अधिक दूध डालने का आग्रह कर रही हैं।

मोहल्ले वालों ने आश्चर्य से पम्पम भय्या की इस तल्लीनता की ओर देखा। किसी ने उनकी इस सफलता को देख कर ईर्षा से व्यंग कसा। किसी ने उनकी इस सफलता को लेकर घृणा से उनकी ओर देखा; लेकिन वे लोकवाद की चिन्ता न करते हुए अपने मार्ग पर आगे बढ़ते गये। और उस समय तक वे अपने पथ पर अग्रसर रहे,जब तक श्रीमती मूचरीकर श्री पम्पम भय्या के स्नेहदान को लेकर उसको मूर्त्त रूप देने 'जच्चाखाना' नहीं चली गयीं।

इस आदान–प्रदान के बाद श्री पम्पम भय्या मुक्त हो गये। उन्होंने अपने विगत पर एक विद्रूप किया—हँसे और आगे बढ़ गये।

उन्हीं दिनों की बात है जब कि श्रीमती मूचरीकर 'मेटरनिटी होम' यानी जच्चाखाने से खाली हाथों एक रात मोहल्ले में वापस आयीं और श्री पम्पम भय्या को बुरा–भला कह कर रात में ही अपना बोरिया–बिस्तरा सम्हाल उस मोहल्ले से अन्तंध्यान होगयीं। श्री पम्पम भय्या की ख्याति पर श्रीमती मूचरीकर के कटु वचनों और ईर्षालुओं के लम्बे–चौड़े प्रवचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि उसे कुछ और अधिक विकसित होने का मार्ग मिला। श्री पम्पम भय्या कुछ दिनों अन्यमनस्क से मोहल्ले में अस्थिर घूमते रहे। लेकिन भाग्य के धनी होने के कारण उनकी स हृदय और परदुःखकातरतापूर्ण आत्मा को अधिक समय तक छड़ी का

पेन्डुमल बने न डोलना पड़ा । एक दिन सहसा पड़ोसी गोविन्दराव पंढरीनाथ खानापुरकर की नौजवान भाभी और उनमें इस बात को लेकर झगड़ा हो गया कि खानापुरकरजी अपना दूसरा विवाह करने की तैयारी कर रहे हैं, जब कि अपनी पहली पत्नी के मरने के समय से गत तीन वर्षों से वह सारा 'पत्नी' का काम अपनी इस नवयुवती भाभी से ही लेते चले आ रहे हैं। पम्पम भय्या ने तुरन्त खानापुरकरजी के घर जा कर कहा:—

"अर...र...गोविन्द राव ! तुम किसी के मनोभावों को कुचल देना चाहते हो...हरे.. हरे...!"

गोविन्दराव ने आग्नेय नेत्रों से श्री पम्पम भय्या की ओर देखा । उसी समय पम्पम भय्या ने हाथ की तम्बाकू की फंकी लगाते हुए कहा—

"तुम्हें कर्तव्य का पालन करना चाहिये । तुम्हारे बड़े भय्या श्री सखाराम बापूजी खानापुरकर मेरे अन्तरंग मित्रों में से थे । उन्होंने कभी कड़ी बात अपनी पत्नी से नहीं कही । और आज तुम उस प्रेम और ममत्व की देवी की अवहेलना कर रहे हो ।"

"श्री पम्पम भय्या !..."

और श्री पम्पम भय्या ने बर्फ-सा ठण्डा हो कर बिना उनकी पूरी बात सुने कहा:—

"नहीं गोविदराव, यह अन्याय है ।"

और जिस समय श्री पम्पम भय्या, गोविदराव पंढरीनाथ खानापुरकर के घर से लौटे उनके चहरे पर अपनी किसी अज्ञात विजय को लिये हुए प्रभात

में खिले हुए गुलाब-सी ताजगी थी, मन हलका था, जैसे धुनी हुई रूई ! उन्होंने ने जहां गोविन्दराव को अपनी बातों से नाराज किया था वहां उसकी नवयौवना, वैधव्य प्राप्त परित्यक्ता, अपमानित और क्षुब्ध भाभी को भी खानापुरकरजी के घर में चिलमन से ताक-झाँक करते और संवेदना के प्रति मूक कृतज्ञता प्रकाशित करते देखा था।

इसके दूसरे ही दिन गोविन्दराव की अनुपस्थिति में वे फिर वहाँ गये। कुछ दिनों बाद सुना गया खानापुरकर जी की जवान भाभी ने गोविंदराव से सम्बन्ध तोड़ दिया है और श्री पम्पम भय्या के निर्देशानुसार अलग घर लेकर रहने लगी हैं।

पम्पम भय्या का अङ्ग-प्रत्यङ्ग अपनी इस सफलता पर रोमांच कर उठा। उनके जीवन में खानापुरकरजी की यह विधवा किन्तु नवयौवना भाभी एक नवीन सन्देश लेकर आयी थीं। लेकिन दुर्भाग्य से वे पम्पम भय्या के साथ अधिक दिन तक सुख से जीवन न व्यतीत कर सकीं। पम्पम भय्या के मूक लेकर सक्रिय स्नेह ने उन्हें 'मां' बनने के लिये बाध्य किया। चूंकि लोक-लाज से भयभीत हो जाने के कारण वे साहस का मार्ग छोड़ कर विपथ-गामिनी हो गयीं——उन्होंने स्नेह की प्रतिमूर्ति को साकार रूप ग्रहण करने के पूर्व ही नष्ट करना चाहा। उन्होंने शारीरिक उपचार से लोकाचार की सीमा बाँधने का प्रयास किया लेकिन शरीर ने उनका साथ नहीं दिया—वे अकाल ही एक मृतक बालक को जन्म देकर काल-कवलित हो गयीं।

सुनते हैं श्री पम्पम भय्या, खानापुरकरजी की इस विधवा भाभी की मृत्यु पर रो पड़े थे। उन्हें उससे स्नेह हो गया था और उन्होंने अपने

परिपक्व रोमाँस के आत्म—चिन्तन के क्षणों में उसे वचन दिया था कि वे उसका आजीवन साथ देंगे और बहुत शीघ्र पुनः उससे सार्वजिनक रूप में पति—पत्नि का सम्बन्ध जोड़ लेंगें। लेकिन विधाता का उल्टा खेल हुआ। श्री पम्पम भय्या की अनेक महत्वाकांक्षाओं और सद्भावनाओं के बावजूद खानापुरकरजी की विधवा, जवान भाभी ममत्व के सारे सांसारिक नाते तोड़ कर परलोक वासिनी हुईं।

पम्पम भय्या कुछ दिनों तक उस दिवंगत आत्मा के प्रति शोक प्रदर्शित करते रहे और महावीर, हनुमान के अनन्य उपासक हो गये—दुनिया से विरक्त और वासना से मुक्त ! लेकिन उनकी विश्वमित्र—सी अचल तपस्या को मोहल्ले के तिराहे पर रहती चमारिन के उठते हुए उरोजों और मदमाती आँखों ने डिगा दिया।

कहते हैं, एक दिन श्री पम्पम भय्या अपनी छत पर टहल रहे थे कि उन्होंने अपने घर के पिछवाड़े, जहाँ समाज से बहिष्कृत, गन्दे पानी की नाली से दूषित और घृणित बने—जीवन की सारी कुरूपता और जातिवाद का गरल भगवान नील कंठ की भाँति पचाये; तिरस्कृत, व्यक्तित्वहीन और स्वर्णों की पशुता के भार से दबे कुछ चमार अपनी जिन्दगी व्यतीत किया करते हैं, उस बस्ती की अनाकर्षक यकसाँ शरीर पर उठे हुए फोड़े—सी झोपड़ियों की ओर देखा और एक झोपड़ी की ओर देखते रह गये।

उन्होंने देखा कि चेता चमार की छोकरी, जो कल तक बालों की लटें बिखेरे, अपपने तईं लापरवाह-सी फिरा करती थी, उस पर जवानी नीम

के वृक्ष पर लदे बौर–सी छा गई है। चोली के अन्दर कसे, उठते हुए उरोज, आँखों में यौवन का उन्माद लिये मादकता, भरा हुआ बदन और चंचल-चपल नयन !

श्री पम्पम भय्या ने यौवन की सदेह प्रतिमा की ओर देखा और उनका शरीर ऐंठने लगा–गरम स्वाँस उनके नथनों से निकलने लगी और उनकी आँखें कुछ अधिक उत्सुक हो कर उस झोपड़ी के दरवाज़े पर खड़ी चमार की छोकरी पर टिक गयीं। यही क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा।

श्री पम्पम भय्या उस चमारिन की ओर देखते और हँस देते। छत की दीवाल की ओट लेकर सँकेत और प्रति उत्तर में कुछ वैसाही उत्साहवर्द्धक संकेत पा खिल उठते। उनके इस रोमांस का अन्त उस समय हुआ, जब कि चेता चमार को श्री पम्पम भय्या की इस गतिशीलता से घबरा कर अपनी एक मात्र जवान लड़की का विवाह शीघ्रातिशीघ्र एक दुजहाँ वर को ढूँढ कर, कर देना पड़ा।

कहने का मतलब यह, कि श्री पम्पम भय्या की इस उम्र में भी सौन्दर्य के प्रति चेतन शक्ति अद्भुत है। और वे आज भी अपने प्रेम को लेकर सक्रिय और गतिशील बने हुए हैं। रसिकता आज भी, अधिक पके हुए आम से रिसते रस–सी उनकी आँखों से बहा करती है और वे एक अन्वेषक की हैसियत से मोहल्ले के परिवारों की गणना अपने पास रखते हैं। दो–एक बार उन्हें अपनी इस गतिशीलता के कारणअपमानित भी होना ओर हाथ–पैरों से चोटिल हो सप्ताह दो-सप्ताह के लिये सिसकना भी पड़ा, लेकिन

लोकवाद और निष्ठुर अभिभावकों की कटु वाणी व डंडे उन्हें अपने पथ से न डिगा सके। और आज तक इस तरह अनेक घटनाएँ उनकी ख्याति के इतिहास में चार चाँद लगातीं तथा उसे वृहद् और रोचक बनाती चली आयी हैं।

श्री पस्पम भय्या का जीवन, मनोविज्ञान का एक ऐसा गूढ़तम रहस्य है, जिसे संकुचित मनोवृति या मानसिक संकीर्णता से नहीं सुलझाया जा सकता।

पठानी-अम्मा

कमर उनकी दो पहाड़ियों के मध्यवर्ती हिस्से-सी झुक गयी थी, चेहरे की प्राकृतिक-कान्ति नष्ट हो गयी थी और आकृति की त्वचा पर सियापा-सा फैल गया था। जिस पर अनगिनती छोटे-बड़े मस्से, गूलर के पत्ते पर उभरे हुए दानों से निकल आये थे। उनकी आँखों की पुतलियों पर कुहरे की मटमैली पर्त-सी फैल गयी थी, जिससे नेत्रों की ज्योति क्षीण पड़ गयी थी और एक मौन, भयानकता उनमें अपना सन्देश छोड़ गयी थी।

स्वास्थ्य उनका बुरा नहीं था लेकिन उम्र के बोझने उनमें शिथिलता भर दी थी। वह अपने में शक्ति का अभाव अनुभव करती थीं, फिर भी...! हाथ उनके किसी वस्तु को उठाते या अपनी लाठी को सम्हालते समय हवा में दोलित पीपल के पत्तों की तरह कांपते थे। वह मन की दृढ़ता से काम लेना चाहती थीं लेकिन शक्ति जवाब दे जाती थी। सिर के बाल उनके भेड़ की ऊन की तरह भूरे हो गये थे, जो अक्सर बरगद की जटाओं से अस्त-व्यस्त और उलझी हुयी लटों के रूप में चेहरे और फटे-दुपट्टे से बाहर फैले रहते थे। बदन पर उनके एक बेढ़ंगा, मैला, नीचे की तरफ चूड़ियों से भरा और ऊपर की ओर गुब्बारे-सा फूला चूड़ीदार पैजामा रहता था, घुटनों से नीचे तक आधी बाहों का मोटे गाढ़े का कुर्ता

और फटा,मैला दुपट्टा सिर पर विचित्र ढ़ंग से पड़ा रहता था। इन वस्त्रों के अलावा उनके हाथों में एक-एक चांदी की बेल-चूड़ी, गले में सोने की बजट्टी,कानों में बड़ी-बड़ी सोने की बालियाँ और पैरों में फटी जूतियां। यह मेरी पठानी-अम्मा का शब्द-चित्र है। जिस समय मुझे अपना बोध हुआ उस समय उनकी उम्र अस्सी से कम न होगी!

जहां हमारे मुहल्ले में आज पीला एक खण्ड मकान आधुनिक सुविधाओं से युक्त, गर्व से गौरीशंकर की चोटी-सा अपना मस्तक उन्नत किये हुए है, वहीं दस वर्ष पूर्व मेरी पठानी-अम्मा की पाटौर थी। मुहल्ले के पक्के मकानों के बीच शरीर के एक-सा भाग के किसी पार्श्व में उठे एक बड़े फोड़े-सी लगती थी। बे-मरम्मत होने के कारण उसमें से जगह-जगह से मिट्टी अधिक पके फोड़े में से रिसती पीव-सी निकली पड़ रही थी। दीवालों का ल्हेसन छूट गया था और उसकी तत्कालीन स्थिति भौंड़ी और भयप्रद लगती थी। मेरी पठानी-अम्मा इसी पाटौर में अपने एक नाती के साथ रहती थीं।

उनका नाम दर असल क्या था यह मैं नहीं जानता था? सारा मुहल्ला उन्हें 'पठानी' या पठानी-अम्मा कह कर पुकारता था और इस प्रबल लोकवाणी के नीचे ही उनका नाम अन्त पा गया था। मुझे स्मरण है इसके अतिरिक्त भी या तो लोग उन्हें 'बब्बू की दादी' या 'मम्मद की मां' कह कर पुकारते थे। लेकिन इसके अलावा मैंने कभी उनसे बशीरन, करीमन, रहीमन, आदि नामों की संज्ञा जुड़ी नहीं सुनी।

आज जो साम्प्रदायिकता के अमानवीय, विषैली हवा के प्रचण्ड झोकों ने मुल्क में मज़हब और फिरकापरस्ती के नाम पर प्लेग के विनाशक कीटाणुओं को लाकर वातावरण को विक्षुब्ध कर दिया है—राजनीति की शतरंजी चालों ने इन्सान को इन्सान का दुश्मन बना दिया है और मानव की ज़िन्दगी का मूल्य पैर तले की चींटी से भी गया—बीता कर दिया है; इस विषमता और ख़ूंरेंज़ी के बीच मुझे 'पठानी अम्मा' का व्यवहार तूफ़ान में प्रकाश—स्तम्भ के प्रतीत—सा प्रतीत होता है। यथार्थ में, आज जब मैं पठानी अम्मा के व्यक्तित्व और उनके व्यवहार को एक बुद्धिवादी की तरह सामने की परिस्थितियों पर कस कर मूल्याङ्कन करने का प्रयत्न करता हूं, तो मुझे अपनी—दशा विचित्र—सी लगने लगती है और मैं अपने लिये ही हास्यास्पद खिलौना बन जाता हूं—पठानी अम्मा का मूल्य मेरी आंखों में और बढ़ जाता है।

मेरी पठानी—अम्मा आकृति से पत्थर—सी कठोर लेकिन अन्दर से मक्खन—सी मुलायम और व्यवहार में मधुमयी थीं। साम्प्रदायिकता का उनमें नामो—निशान नहीं था। मुहल्ले के हिन्दू मुसलमानों के बच्चे टोलियों में उनके पास पहुंचते थे और उनका हाथ ममता से हरेक के सिर पर दुलार करता था—वाणी, आशीषों की वर्षा आरम्भ कर देती थी और आंखों से मटियाले धुंध को चीरता हुआ स्नेह; अजस्र—स्रोत—सा बह निकलता था। लड़के उनसे ठिठोली करते थे और उस समय वह उम्र द्वारा पाई संजीदगी के बाने को अपने दूर कर बिल्कुल हमजोलियों—सी हम लोगों में मिल जाती थीं। लेकिन मैंने देखा है जहां वह मुहल्ले के

बाल–गोपालों के रचे रास में तन्मय हो जाती थीं वहाँ वह बड़े से बड़े घर के लोग–बागों के अनौचित्य पर खुल कर टीका–टिप्पणी करने से भी बाज़ नहीं आती थीं—उनमें अनुशासन का प्रबल माद्दा था।

आज जब मैं पठानी–अम्मा की बात लिपिबद्ध करने बैठा हूँ तो विस्मृति के अतल–सागर से स्मृतियां पानी की सतह पर उठते बबूलों–सी मेरी आँखों के सामने तिरने लगी हैं। एक दफ़े की बात है:—

होली के दिन थे। मुहल्ले के छोटे–बड़े लड़कों का जत्था कंडे, ईंधन इत्यादि संग्रह करने में व्यस्त था। पास के मुहल्ले के लड़कों से होड़ इस बात की थी किस की होली अधिक ऊंची और ठाठ से अधिक दिन तक जलती है। इस स्पर्द्धा को सफल बनाने के लिये हमारे मुहल्ले के हिन्दू-मुसलमानों के लड़के जी–जान से कोशिश कर रहे थे। छोटे–छोटे लड़कों के गिरोह में, मैं भी था और पठानी अम्मा का नाती (बब्बू) भी !

उन दिनों 'अनुचित' हमारे काम पर अपना प्रतिबन्ध नहीं लगा पाता था—हम लोग अपने को हवा–सा उन्मुक्त और पराग–सा हलका अनुभव किया करते थे। मैं यहां सोचने लगा हूं कि आज जो 'विचित्रता' मुझ में अपने व्यापक रंगों में फैल गयी है और जिस कृत्रिमता को संवार कर अपने जीवन में 'उचित' और 'अनुचित' के अर्द्ध-विराम और पूर्ण-विराम लगा कर अपने का व्यवहार कुशल और योग्य अपना आंखों में समझने लगा हूं, आज से पन्द्रह वर्ष पहले यह बात नहीं थी। उस समय बोलता तो चिड़ियों–सा चहकता ही चला जाता था। आज जिस उत्तरदायित्व और

सांस्कृतिकता के कड़े प्रतिबन्धों ने मेरा फक्कड़ों–सा जीवन संकुचित कर दिया है, उन दिनों इन प्रतिबन्धों की हवा में भी कल्पना नहीं थी। आज मैं देखता हूं मेरा अपने सामने की चीज़ों को देखने का दृष्टि कोण बदल गया है—मैं बदल गया हूं—मेरा युग और मेरे युग की चीज़ें बदल गयी हैं। तब मेरा कल वाला अतीत अति प्रबल होकर, उन स्मृतियों को आज की कुरुपता और कृत्रिमता के मध्य अत्यन्त मोहक रूप में ला खड़ा कर देता है

हां, यह होली के लगभग एक सप्ताह पहले की बात है। अर्ध-खण्ड चाँद की रुपहली चाँदनी में हम छोटे लड़कों के गिरोह ने एक घोसी की पाटौर पर चढ़ कर कंडे उतारने की ब त तै की। आधा रात को मुहल्ले के सूने मन्दिर के भाग में सब लड़के इक्ट्ठे हुए। किसी ने घर के पिछवाड़े से मन्दिर की शरण ली और नियत समय पर आ पहुंचा--किसी ने आहिस्ता से अपने घर का दरवाज़ा खोला और उड़ान–छू हुआ। हमने भी अपने कमरे के सामने वाले छज्जे से उड़ी लगायी और आम सड़क के पक्के फर्श पर टप' से, पके कैथ से आ गिरे। ठीक समय पर लोगों ने घोसी के घर पर धावा बोल दिया। दो लड़के उसकी पाटौर पर चढ़ गये, दो बीच के हिस्से में खड़े हुए और बाक़ी नीचे कपड़ों में कंड़े भरने लगे। कंड़े पाटौर से तेज़ी से नीचे आने लगे और उनकी पोटली बंध–बंध कर; अण्डे ले जाती हुई चीटियों की कतार–सी–गली में रेंगने लगी। मैं, पठानी अम्मा का नाती 'बब्बू' पाटौर पर थे और सब मे ज़्यादा सावधानी हमीं लोगों को बरतनी पड़ रही थी। लेकिन भाग्य की बात, कंड़ों की आख़िरी जेठ भर कर जैसे ही हम पाटौर पर खड़े हुए कि कुछ कंडे हमारे हाथ से छूट कर भयानक

चीत्कार करते हुए घोसी के आँगन में जा गिरे। आवाज़ के साथ ही घोसी उठा। मैं फुर्ती से हाथ में बचे हुए कंड़ों को वहीं छोड़ कर पाटौर से कूद पड़ा और नौ–दो ग्यारह हो गया। घोसी ने बब्बू को धमकाया तो भय के मारे बेचारे ने सारे मुहल्ले भरके लड़कों के नाम बतला दिये। घोसी बब्बू को लेकर मुहल्ले में आया और मुहल्ले-भर में हो–हल्लड़ मच गया। हम लोग अपने घर ज़रूर पहुंच गये थे लेकिन घोसी के चीख़–चीख़ कर दुहाई देने की आवाज़ हमारी जान नाख़ूनों में ला रही थी। मुहल्ले के लोग घर से निकल–निकल कर आ गये। पठानी अम्मा भी लाठी टेकती हुई मन्दिर पर आ पहुंची और चबूतरे पर थक कर बैठ गयीं। उन्हें परिस्थिति का ज्ञान हो गया था। मैंने अपने कमरे से, जो मन्दिर के चबूतरे से ठीक ऊपर है, देखा। पठानी अम्मा ने घोसी से कहा—

"क्या है रे, क्यों रात को हाय तोबाह मचाये हुए है ?"

घोसी ने तेज़ी से हाथ नाचते हुए कहा—

"अरे अम्मा, छोटे लोगों की कौन कहे अब तो बड़े लोगों के लड़के भी डाके डालने लगे। तुम्हारे मुहल्ले भर के लड़कों ने बात–की–बात में मेरी पाटौर से कंड़े पार कर दिये।"

इतना मुझे अच्छी तरह याद है इसके बाद हमारी पठानी अम्मा ने उस घोसी को आगे चीख़ने नहीं दिया। उन्होंने डपट कर कहा—

"सम्हालकर मुंह से बात निकालो! जनता है तू कहाँ बात कर रहा है ?"

घोसी, पठानी अम्मा की पहली धौंस में ही सहम गया। लेकिन उसने फिर साहस कर कहा—

"यह देखो तुम्हारा नाती ही सबके नाम बता रहा है।"

पठानी अम्मा अपने नाती का नाम सुनकर एक क्षण के लिये स्तम्भित रह गयीं—

"कौन...बाबू ?"

और फिर सम्हल कर बोलीं—

"झूठ बोलता है यह, यही तेरी चोरी करने गया होगा।"

और फिर क्रुद्ध होकर बोलीं—

"पीट, मुंह जले को ! अपना औगुन दूसरों पर थोपता है।"

कहते-कहते वह उठीं और अपने हाथों से उन्होंने कस-कस कर दो-तीन तमाचे बाबू के रसीद किये। हम लोगों के घर वाले सभी जानते थे कि इसमें अपराध मात्र बब्बू का नहीं है, सभी लड़कों की शरारत है। लेकिन, स्वार्थ की भावना ने उन्हें अपना और अपने लड़कों का हित इसी में देखने दिया कि वे चुप्पी साधे रहें। किन्तु पठानी अम्मा का अपना स्वार्थ कुछ भी नहीं था। यदि एक उनके नाती के पिटने से मुहल्ले भरके लड़के साँसत से बचते हैं तो उनके लिये अपने नाती का पीटना ही भला है। भला वह अपने मुहल्ले भरके लड़कों को किस प्रकार चोरी का इल्ज़ाम लगवा कर बदनाम करवा सकती थीं ? मुहल्ला किसी एक क़ौम का उनकी नज़रों में नहीं था। वह होली का त्यौहार सिर्फ हिन्दुओं का नहीं समझती थीं।

मुहल्ले की इज्जत उनकी अपनी इज्ज़त थी । हिन्दुओं के त्यौहर उनके अपने थे ! 'अपने' और 'पराये' की भावना से ऊपर थीं ।

मेरी पठानी अम्मा को अपने जीवन में अनेक दुःख सहने पड़े । उनके खाविंद की मौत की बात छोड़िये । उनका जवान बेटा 'मम्मद' मरा तो वह अपने नाती (बब्बू) को अपनी छाती से चिपकाकर सन्तोष कर रह गयीं । लेकिन नाती भी अपने जीवन के पन्द्रह वसन्त नहीं देख पाया था कि चल बसा । निस्सहाय, नब्बे वर्ष की बुढ़िया को मैंने इन्हीं आँखों अपनी ज़िन्दगी का बोझ ढोते देखा है । पठानी अम्मा की आर्थिक स्थिति जवान बेटे और जवान नाती के मर जाने के बाद विपिन्न हो गयी थी । लेकिन उन दिनों भी मैंने स्वाभिमान की, जो उनके व्यक्तित्व का निखरा हुआ अङ्ग था, तिल भर भी कमी नहीं पायी थी । वह उसी तरह से डपट कर मुहल्ले के सम्मानित व्यक्तियों के आधे नाम लेकर पुकारती थीं—मुहल्ले की स्त्रियाँ उनका आदर करती थीं और बच्चों के प्रति उनका दुलार वैसा ही सम्पन्न था । लाठी टेककर आहिस्ता-आहिस्ता वह अपनी पाढ़ौर से निकल कर मन्दिर के चबूतरे पर आ बैठती थीं और घंटों कौड़ियों से गलझप खेलते लड़कों की ओर अपनी निष्प्रभ शून्य आँखों से देखती रहती थीं । घुटनों से खिसकते बच्चों को उनकी मां पठानी अम्मा के पास छोड़ देती थीं और वे उनके पास किलकारी मारते, हर्षध्वनि करते इधर से उधर मेंढक से उछला करते थे ।

आज मैं उन पठानी अम्मा के विषय में सोचता हूं तो मुझे ज्ञात होता है कि पठानी अम्मा ने अपनी दुनिया ही अत्यन्त व्यापक बना ली थी

जिसमें मुहल्ले भरके बच्चे, लड़के और नाती थे । ब्राह्मण, बनिये, कायस्थ, धोबी, चमार आदि सभी उनकी जाति के थे । ईमान उनका मुसलमान था और इन्सानियत उनका असली मजहब था। दुख-दर्द की भावना से वे ऊपर थीं । मैं उन्हें अपने जीवन के सम्पर्क में आये एक अत्यन्त महान व्यक्तित्व के रूप में स्मरण करता हूं। यदि आज कोई हिन्दू—मुस्लिम एकता पर भाषणकर्त्ता मेरे सामने आये, तो मैं निस्संकोच भाव से अपनी पठानी अम्मा के व्यवहारिक जीवन और वास्तविक घटनाओं का सक्रिय गुण उसके सामने वर्णन करूंगा और कहूंगा:—

"जनाब, आप मेरी पठानी अम्मा के पद-चिह्नों पर चलिये । मात्र भाषण कुछ नहीं हैं। आप भाषणों से पहले अपना अस्तित्व ही दूसरी कौम के चरणों पर अर्पण कर दीजिये ।"

———×———

मिस्टर रॉमेशचन्दर

कभी-कभी आपके जीवन में कुछ ऐसे भी व्यक्तित्व घर कर जाते हैं, जिनके विषय में आप न भी सोचें फिर भी वे आपकी कल्पना में आ ही जाते हैं। और तब आप चाहें जैसी आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक गुत्थियों में क्यों न उलझे हों, विषम परिस्थितियों के कारण गम्भीरत्तम क्यों न हों; अपनी कल्पना में आयी उस आकृति को सामने पा कर आप समस्याओं की विषमता को भूल जायेंगे-और आप हैं कि बस हँसने लगेंगे। उस समय आप कल्पना के साथ-साथ स्मृति के अतल सागर में एक के बाद एक, अनेक ग़ोते लगायेंगे। आपकी हँसी का यह क्रम यहाँ तक बढ़ेगा कि आपके पास बैठे अन्य सज्जन आपकी इस बे-बात की हँसी पर आरम्भ में ही मीठी चुटकी लेंगे, फिर झिड़कियाँ देंगे, आपको परले दर्जे का बेवकूफ़ समझेंगे और फिर भी आपकी यह धारावाहिक हँसी न रुकी तो स्वयं को मख़ौल बनाने का ज़रिया समझ कर, एक अपमान की भावना से साँप-सा बल खा आप से स्पष्ट रूप से नाराज़ हो चले जायेंगे। लेकिन तब भी उस विचित्र व्यक्ति के जीवन से लगी घटना के सम्बन्ध में आप सोचना न छोड़ सकेंगे। छोड़ सकें, यह एक असम्भव-सी बात होगी।

ठीक यही बात अभी मेरे साथ हुई । साहित्यकों की एक गोष्ठी में, मैं बैठा हुआ था कि अनायास एक पुरानी स्मृति सजग हो उठी । स्मृति के साथ ही उनकी आकृति का आना था कि हंसी का किसी रुके हुए पानी-सा फूट निकलना था । उन महानुभाव की एक-एक पुरानी हरकत सामने आने लगीं । और हम हँसी पर बेक़ाबू होने लगे । हम भूल गये कि हम एक सांस्कृतिक संस्था में बैठे हुए हैं-हम भूल गये कि यहाँ हम जीवन के तत्वों जैसे गहन विषय पर विचार कर रहे हैं । और हम संस्कृति तथा सामाजिक शिष्टता के सारे प्रतिबन्धनों को तोड कर ऐसे हँसने में मशगूल हुए कि व्यवहारिक जीवन के इस हल्के-फुलके नियम को भूल गये कि सभ्य-समाज में बिला बात के हँसना, असभ्यता है—एक हिमाक़त है । लेकिन बावजूद इन नियमों के भी हमारी कल्पना थी कि भींगती चली जा रही थी और हमारा मुँह हँसी के खजाने से भरा हुआ था। हमारे आस-पास बैठे साहित्यिक मित्र हमारी इस बिना बात की हँसी के कारण परेशान थे और हम थे कि हँस-हँस कर उनकी परेशानियों को और बढ़ाते जा रहे थे । हमारे पास बैठे एक मित्र ने हमारी इस हँसी से चिढ़ कर, एक हल्की-सी थपकी हमारी पीठ पर रसीद करते हुए कहा:—

"आखिर जनाब को कौन-सा कारू का ख़ज़ाना मिल गया कि श्रीमान हँसे चले जा रहें हैं?"

हमने उन सज्जन की ओर देखा कि हमारी कल्पना में आया हुआ व्यक्तित्व पुनः सामने आ गया और हम फिर हँस पड़े ! वे सज्जन न जाने क्या सोच कर झेंप से गये । गोष्ठी के अन्य सदस्यों ने, एक के बाद एक

ने ताने कसना आरम्भ किये। किसी ने कहा:--"यह अकेले ही अकेले क्यों मिश्री घुल रही है।"

तो दूसरे साहब ने अपने हाथ की पतली-पतली अंगुलियों में मुद्रा अंङ्कित करते हुए कहा--

"हज़रत किसकी याद में फ़िदा हुए जा रहे हैं?"

लेकिन यहाँ जब एक बार हँसना आरम्भ किया कि अपना संयम, अपना विवेक और अपनापन खत्म! उस समय हमने एक चतुराई अवश्य की थी कि हम गोष्ठी से उठ कर चले आये। वरना उस समय इस हंसी के कारण अपमान-जनक-व्यवहार; यहाँ तक कि पिटने की नौबत आजाती।

आप मिस्टर रोमेश को नहीं जानते-यदि जानते हैं तो इस नाम के लेते ही अपनी हँसी पर आपका बेक़ाबू होना अनिवार्य है। उनकी आकृति सामने आते ही एक हल्की-सी फुहार उदासीनता और विषण्ण हुए वातावरण पर आ गिरती है और उसकी उग्रता तथा मन्हूसियतको खत्म कर देती है। भला कहाँ यह सम्भव है कि उनकी हरकतें आपके सामने नाच उठें और आप फिर भी अपने को विचार-निमग्न बनाये रख सकें। उदासीनता का कुहरा आप पर छाया रह सके? मुझे मिस्टर रोमेश का एक लम्बे अर्से तक मित्र रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वे हमारे नगर के उन विचित्र व्यक्तियों में से हैं जिनकी जन-गणना होने पर अंगुलियों तक ही सीमित रहेगी। उनकी हरेक बात-हरेक अदा लाजवाब; खाने-पीने, कपड़े पहनने और बातचीत करने के ढंग से लेकर चलने-फिरने, मुस्कराने आदि सभी में कुछ विशेषता लिये हुए। आप दुबले-पतले, सूखी शीशम की क़िस्म के

आदमी हैं। अपनी बात पर अड़ जायें तो टूट भले ही जायें लेकिन नबने का नाम न लेंगे। चेचक-रू, पिचका हुआ चेहरा, गालों के दोनों ओर की उठी हड्डियाँ, चौड़ा माथा, सूआ--सी नाक, आँखें मझोले साइज की, सिर पर एक फुट लम्बे उल्टे हुए बाल, दाँत चीनियों. से पीले, आँखों पर मोटे लेंस का चश्मा, ओंठ पतले और उन पर हल्की कालिमा लिये हुए पपढ़ी जमी हुई! बदन पर नीली–नीली नसें उभरी हुई–शरीर पर खेत के मेंड़ों पर जमी हुई जंगली घांस की तरह बाल जमें हुए–सुराहीदार गर्दन और गेहुंआ रंग! यह है संक्षिप्त में मिस्टर रोमेश चन्द्र का शब्द–चित्र!

मिस्टर रोमेशचन्द्र, जैसा आपको नाम से लगता होगा एंग्लो इण्डियन, पोर्चगीज़ या पारसी नहीं हैं। सीधे-साधे एक सनातनी भटनागर कायस्थ परिवार में पैदा हुए हैं। हिन्दू–संस्कृति के अनुसार ही उनका नामकरण हुआ था और इस तरह जीवन के आरम्भ में वे मात्र मिस्टर रमेशचन्द्र भटनागर थे। लेकिन दसवीं क्लास में आते–आते उनमें अद्भुत परिवर्तन हुआ। उनके अन्दर काव्यमय विचारों का स्रोत उमड़ने लगा। और उन्हें आभास मिला कि उनके अन्तर–मन में महर्षि बाल्मीकि या महाकवि तुलसीदास की आत्मा ने प्रवेश किया है। उनकी भावना में काव्यमय लालित्य आ गया है–उनकी प्रतिभा जागरूक हो उठी है और वे ब्रह्मांड का सम्पूर्ण विवेक पा कर 'कवि' हो गये हैं। दूसरे दिन लोगों ने उन्हें अपने शहर की सड़कों पर पटलीदार नीची धोती, पैरों में चप्पल, बदन पर सिल्क का कुर्ता, बालों की पट्टियाँ पीछे को खिंची हुई और शरीर पर एक क़ीमती शॉल लपेटे घूमते पाया। उन दिनों

स्कूल में वे प्रायः हम लोगों से बातचीत करना पसन्द नहीं करते थे। उनके कुछ चुने हुए मित्र थे, उनमें ही वे चहकते थे और दून के स्वर में बहकते रहते थे। इस परिवर्तन के दूसरे दिन ही स्कूल भर में, मुहल्ले भर में और शहर के परिचित क्षेत्रों में यह ख़बर किसी समाचार-पत्र की 'बेनर लाईन' के समाचार की तरह फैल गयी कि मिस्टर रमेशचन्द्रजी कवि हो गये हैं— हिन्दी काव्य-कानन की नवोदित कली ने अपनी सारी पंखुड़ियाँ खोल कर भीनें-भीने सुगन्धि सिक्त सौरभ को श्रीयुक्त रमेशचन्द्रजीं के गले के नीचे उतार दिया है। और इस सौरभ से उनका काव्य-मानस उर्वरा हो उठा है। तीसरे दिन उन्होंने जो पत्र अपने एक स्थानीय मित्र को लिखा था, वह छपे हुए लेटर पेड पर था और उस पर लिखा हुआ था—

श्री रमेशचन्द्र 'प्रेम'! यानी 'प्रेम', उन्होंने अपना उपनाम रखा था।

परीक्षा के दिन निकट आ रहे थे और उनके मानस में कविता सोलहों श्रृंगार कर अमित लालसा भरे व्यस्क यौवन सहित कल्लोल करने लगी थी। उनके मित्रों ने देखा कि रमेश तो एक दिन में कवि बन गये और स्वान्तः सुखाय 'प्रेम' की उपाधि भी ग्रहण कर ली; तब उन्हें मगज़ पच्ची करने, रात-रात भर जागने और अङ्क गणना से क्या मतलब है? लेकिन उनके मित्र स्वयं के लिये ऐसा न सोच सके विशेष कर उनके अनन्य मित्र श्री नित्यानन्द! प्रेमी जी, नित्य अपनी छायावादी और रहस्यवादी अतुकान्त कविताओं में अपनी भावना और कल्पना के सुमन पिरो कर ले जाते, लेकिन उनकी मण्डली का कोई भी सदस्य उनकी कविता और कल्पना की उड़ान पर 'दाद' देने वाला न

मिलता। उन दिनों उन्हें अपने अभिन्न मित्र नित्यानन्द से बड़ी मायूसी हुई।

'प्रेमजी' बड़े बन-ठन कर एक दिन नित्यानन्द के यहां गये कि उसके भाई ने यह कह कर टाल दिया—

"भैया तो स्टडी करने मास्टर साहब के घर गये हैं।"

प्रेमजी उन दिनों बड़े परेशान थे कि यह दसवीं क्लास के लड़के अपने को समझते क्या हैं? जब देखो तब स्टडी, जिनके घर जाओ अपने घर से ग़ायब! तब उन्होंने अपनी वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन किया और सामने की परिस्थितियों पर यह निर्णय दिया कि स्थानीय साहित्यक-समाज में प्रवेश किया जाये और.. शहर की मरु, ऊबड़-खाबड़, पथरीली, भरके, कगारों तथा वादियों से वेष्टित बुन्देलखण्डी ज़मीन पर अपनी प्रतिभा की ज्योत्स्ना बिखेर कर स्थानीय उदासीन साहित्यक-समाज को—नव स्फूर्ति से, नव-जागरण की भावना से ओत-प्रोत किया जाये। इधर मन में यह विचार आया और उधर आपने एक लेख-माला इस सम्बन्ध में लिखना आरम्भ कर दी। एक दिन वे उस लेख-माला की पाण्डुलिपि लेकर मेरे पास आये, बोले:—

"क्रान्ति मचा दूंगा। स्थानीय विछिन्न साहित्यक शक्तियों को एक सूत्र में न पिरो दिया तो 'प्रेम' नाम बदल दूँगा।"

फिर ज़रा सम्हल कर बोले—

"ज़रा इस लेख-माला को सरसरी निगाह से देख डालो।...... के सम्पादक ने माँगा है, उन्हें आज ही देना है।"

मैंने एक अनभिज्ञ लिपि और अगम्य साहित्य की पाण्डलिपि को देखा; किन्तु यह समझ न सका कि 'प्रेमजी' साहित्यकों को क्या सन्देश देना चाहते हैं और वह किस भाषा की लिपि में लिखा गया है ? लेकिन प्रेमजी के आलोचनात्मक लेख की प्रत्यालोचना करना मुझ सरीखे क्षुद्र के लिये कहाँ सम्भव था ? अतएव मैंने केवल इतना कहा—

"क्या कहने हैं आपके! आपकी लेखनी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की-सी चुभन और स्पष्टवादिता है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की-सी मौलिकता है और मुन्शी प्रेमचन्द-सा युक्ति-संगत-प्रौढ़ गद्य है। और सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि ऐसे शुष्क और नीरस विषय में भी आपने माधुर्य्य घोल दिया है।"

प्रेमजी अपनी प्रशंसा सुन कर अरुणोदय-से दीप्त हो उठे। बोले—

"चलो...के सम्पादक को दे आयें। कल बड़ी खुशामद कर गया है बेचारा! चीजों पर मनन और अध्ययन करके आज कल मौलिक विषयों पर लिखता ही कौन है?"

लेकिन प्रेमजी ने...के सम्पादक महोदय के पास जा कर जो अनुनय और विनय का अभिनय करना आरम्भ दिया उससे मुझे उनके साथ आना अशोभन प्रतीत हुआ। मतलब यह कि उन्होंने सम्पादक को हरेक प्रकार से इस बात के लिये विवश करना चाहा कि उस लेख का उनके पत्र में प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है—सार्वजनिक हित में है और अधिक से अधिक अगले सप्ताह के अङ्क में तो वह प्रकाशित हो ही जाना चाहिये अन्यथा उसकी उपयोगिता नष्ट हो जायेगी।

प्रेमजी के सब कुछ कह लेने पर सम्पादक जी ने अपने मोटे लेन्स के चश्मे को नाक पर ठीक से सम्हालते हुए श्री प्रेमजी की विनय और कृपाकांक्षा की मूर्तिवत् आकृति की ओर दृष्टिक्षेप किया और फिर पाण्डुलिपि की लिखावट देखने और उसके पन्ने उलटने आरम्भ किये। मुझे उन्हें देख कर ऐसा लगा कि यह क्षण प्रेमजी के लिये परीक्षा में उतीर्ण या अनुतीर्ण होने के समान निर्णायक हैं। प्रति क्षण वे उत्सुकता से सम्पादक जी की मुख–मुद्रा का अवलोकन करते और उनके मनोभावों को पढ़ने की चेष्टा करते।

थोड़ी देर के बाद सम्पादक महोदय ने कहा—

"देखिये प्रेमजी बात यह है कि प्रेस सम्बन्धी आज–कल कुछ ऐसी अव्यवस्था है कि 'पत्र' में कुछ अधिक मेटर जा नहीं पाता। और आपका लेख ठहरा सामयिक, थोड़े समय तक भी पड़े रहने से उसकी उपयोगिता मारी जायगी। अतएव मेरी समझ में इसे कहीं बाहर भिजवा दीजिये।"

प्रेमजी का मुंह परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए विद्यार्थी–सा उतर गया। मैंने एक बार उनकी ओर देखना चाहा, पर उनके लज्जा और संकोच से मुकलित हुए चेहरे की ओर देख न सका। आगे वे कुछ न बोले, पाण्डुलिपि लेकर चले आये।

रास्ते में आकर कहने लगे—

"भाई, यह तो प्रोपेगेन्डे का ज़माना है। कल यही सम्पादक का बच्चा मुझ से कहता था कि मेरी नई पुस्तक की एक बढ़िया–सी सम लोचना कर दो। नहीं की तो आज रुख बदल लिया। अमाँ, यह न छापे न छापे। यहाँ एक नहीं सैकड़ों की माँग रहती है।"

समय बीतता गया कि एकाएक एक दिन सुना गया कि बाबू रमेशचन्द्र भटनागर प्रेममय काव्य का बाना अपने विवेक पर से उतार कर केम्ब्रिज की परीक्षा में सम्मिलित होने की तैयारी कर रहे हैं। और उनकी पढ़ाई की किताबें, लेसन आदि सभी कुछ सीधा विलायत से आ रहा है। तो इधर बाबू रमेशचन्द्र ने केम्ब्रिज का अध्ययन शुरु किया और उधर एक मिस प्रभावती व्यास से उनका रोमांस आरम्भ हुआ। अब यह हाल है, उनका ताँगा मिस व्यास को स्कूल पहुँचाने जा रहा है, तो बाबू रमेशचन्द्र कोचवान बने हुए बैठे हैं। उन दिनों प्रेम का इस क़दर उन पर रङ्ग गहरा चढ़ा कि कहीं मित्रों में बैठे हुए हैं तो स्वयं ही प्रभावती की योग्यता की चर्चा करके अपनी उससे घनिष्टता का परिचय दे रहे हैं

धीरे-धीरे वह साल भी समाप्त हो गया और वे अस्वस्थ रहने के कारण केम्ब्रिज की परीक्षा में सम्मिलित न हो पाये। एकाएक फिर उनके मन ने पढ़ाई की ओर से पल्टा खाया और उन्हें पढ़ाई निस्सार दिखाई देने लगी। उन्होंने सोचा किसी ऐसी नवीनता को जन्म देना चाहिये कि लोग आश्चर्य से मुंह में अँगुली दाब लें—कहने वाले भी एक दफ़ा कह उठे कि काम तो यह लाजवाब हुआ है। उन दिनों आपने अपने पिता से अस्वस्थ रहने के कारण घर से अलग और शहर से बाहर रह कर सेहत सुधारने और व्यवसाय करने का प्रस्ताव किया। कहने लगे—

"यह ज़माना पुराने दक़ियानूसी तरीक़ों से चलने का नहीं है। मैं तो बाहर रह कर एक समय में दो काम करना चाहता हूँ। कुछ गेहूँ की और कुछ तरक़ारियों की खेती करवाऊंगा। मुर्गी पालूंगा और डेअरी

खोलूंगा। आप देखिये तो मेरी योजना सफल होते ही रुपया किस तरह बरसता है। फिर दोनों हाथों में मुद्रा अङ्कित कर आसमान से पानी बरसाने का अभिनय करते हुए अपनी सफलता की कल्पना कर हँस पड़े।

कहने का मतलब यह है कि उन्होंने अपने पिता को वह सब्ज़-बाग दिखलाये और अपने कल्पित व्यवसाय द्वारा सोने और चाँदी के ढेर लगा कर बतलाये कि पिता को भी वशीकरण-मन्त्र द्वारा विमोहित व्यक्ति की भाँति उनकी हाँ में हाँ मिलाने के लिये मजबूर होना पड़ा।

आरम्भ में अपनी योजना बना लेने के बाद जो चीज उनके दिमाग़ को कई दिनों तक परेशान करती रही थी, वह था अपनी फर्म का नाम रखना। इस मुसीबत का उन्हें कई दिनों तक सामना करना पड़ा था। क्यों कि वे अपनी फर्म का ऐसा नाम रखना चाहते थे जिससे कि परिचित और अपरिचित आश्चर्यान्वित हुए बिना न रह सकें। उनका दिमाग़ उन दिनों न केवल स्वदेश में अपनी फर्म की धूम मचा देने के लिये यत्नशील था बल्कि सात समन्दर पार विलायतों में भी वे उसका प्रचार करना चाहते थे। उनके पिता एक से एक बढ़ कर हिन्दुस्तानी नाम उन्हें सुझाते थे, जैसे "ग्रामीण उत्पादन केन्द्र," "भटनागर स्वदेशी भण्डार" आदि! लेकिन इन स्वदेशी नामों के प्रति एक खीज उनकी बढ़ती जा रही थी और वे ऐसे नाम सुन कर नफरत से मुंह टेढ़ा कर लेते थे। सहसा एक दिन उनके दिमाग़ में तरंग उठी और पिता के सामने जा कर उन्होंने चुटकी बजाई। बोले—

"लीजिये अपनी फर्म का नामकरण हो गया।"

पिताजी, फर्म के लिये उपयुक्त शब्द ढूँढते कुछ परेशान से हो

गये थे। वे अपने सुपुत्र की ओर आशा से देखने लगे।

बाबू रमेशचन्द्र ने गर्व से अपने एक बालिश्त के चौड़े सीने की ओर देखा। कहने लगे—

"यह कमबख्त ज़माना तो दिखावे का है। जितना आप प्रदर्शन कर सकें उतनी ही आपकी चाँदी है। मैंने इस विषय पर बड़े ग़ौर से सोचा है। फर्म के नाम में देशीपन बिल्कुल नहीं होना चाहिये।"

रमेश बाबू मुस्कराये—

"कहिये अपनी फर्म का नाम "रोमेश ब्रादर्स" कैसा रहेगा ?"

और दूसरे दिन शहर से बाहर आगरा–बाम्बे रोड की सूनी कोठी किराये पर लेकर उसके सामने एक बड़ा–सा साइन बोर्ड पेन्ट कर के टंगवाया गया—

"रोमेश ब्रादर्स, गवर्नमेन्ट कॉन्ट्रैक्टर्स, कमीशन एजेन्ट, सप्लायर्स पोल्ट्री, नर्सरी आदि...आदि !"

और इस तरह उन्होंने फर्म के नामकरण की समस्या को सुलझाया।

और इस तरह श्री रमेशचन्द्र व्यवसाय को व्यापक रूप देने और अपनी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये "रोमेशचन्द्र र" हो गये। बढ़िया बेंक पेपर पर उन्होंने अपने लेटर–पेड छपवाये और काम त्वरित गति से आरम्भ हो गया। कोठी के सामने सड़क के नीम के पेड़ पर एक लोहे की पट्टी पर हाथ बना कर लिखा हुआ था—

"पेट्रोल सोल्ड हियर" एक दूसरी लोहे की पट्टी थी जिस पर लिखा हुआ था "आँटे की चक्की।"

इस नयी,शहर की बाहर की कोठी में आकर वह अपने को अधिक स्वतन्त्र महसूस करने लगे थे। उस इतनी बड़ी कोठी में नौकर–चाकरों की बात छोड़िये; अन्यथा वे बिल्कुल अकेले थे। कुछ दिनों तक तो उनकी अभिरुचि काम की ओर लगी रही। लेकिन उन्हें बाद में यह एकाकी जीवन बुरी तरह अखरने लगा। सोचा कि विवाह बिना जीवन निस्सार है । इस विचार के साथ ही उन पर उदासीनता की गर्द छाने लगी और जीवन बोझिल मालूम होने लगा। दोस्तों से भी वे ज़रा कटने लगे । कारण कोई विशेष नहीं, पूछने पर केवल इतना बताते कि वे काम में इतना व्यस्त रहते हैं कि गत वर्ष भी उन्हें केम्ब्रिज की परीक्षा में बैठने का अवसर नहीं मिला। और शहर से बाहर रह कर सोच रहे हैं कि अब केम्ब्रिज की परीक्षा में बैठना व्यर्थ है। एक बार क्यों न फिर मध्यभारत बोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा में सम्मिलित हुआ जाय। उनके इस निर्णय के पीछे मिस प्रभावती व्यास और मिस्टर व्यास का भी हाथ था।

रहस्य यह था कि गई साल फिर भाई–बहन परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये थे। उस साल खुली हवा की शानदार कोठी में अपनी सेहत सुधारने और बिज़नेस करने के साथ–साथ मिस्टर रोमेशचन्द्र ने मिस और मिस्टर व्यास के साथ सम्मिलित अध्ययन किया पर परीक्षा फल निकाला तो तीनों नाम ग़ायब थे।

साल भर बीत गया और हमें मिस्टर रोमेशचन्दर के दर्शन नहीं हुए। एक दिन उन्हें देखने की उत्कट अभिलाषा हुई और हम उनके घर

पहुँचे। वे घर पर नहीं थे पिताजी मिले। मुझे देख कर बोले—
"आओ...बैठो बेटा।"

उनका चेहरा उदास था। बात मैंने ही छेड़ी—

"आज कल रोमेश बाबू का धन्धा कैसा चल रहा है?"

मेरे 'रोमेश' उच्चारण से वे मुस्कराये।

'रोमेश चन्दर!' फिर उत्तेजित होकर बोले—

'अब तुम्हें क्या बताऊँ इस लौंडे ने तो मुझे न तो घर का रखा और न घाट का! अभी तक मुझे अंगुली पर नचता रहा है। सुन कर आश्चर्य करोगे, परसों सारी मशीनें बिक्री हैं, पेट्रोल और किरासीन का तेल बेचा गया है। और यह सब बेच कर भी बारह हज़ार का नक़द नुक्सान हुआ है।"

मैंने संवेदना प्रगट करते हुए पूछा—

"लेकिन यह सब बेचना क्यों पड़ा?"

व्यङ्ग भरे स्वर में वे कहने लगे—

"साहबज़ादे की सेहत वहाँ अकेले रहने की वजह ठीक नहीं रहती थी।"

मैं उस दिन एक भारी उदासी मन पर लादे वहाँ से उठ गया। एक दिन शहर के मुख्य बाज़ार की एक दुकान पर उनके नाम का साइन बोर्ड टंगा देख कर मैं चौंक उठा। इस बार मिस्टर रोमेशचन्दर ने हेट और स्पोर्टस के सामान की दुकान खोली थी।

दिन बीतते गये लेकिन न तो इस बीच मिस्टर रोमेशचन्दर से भेंट हो सकी और न उस दुकान को ही नियमित रूप से खुलते देखा । कभी एक रोज़ दुकान खुली और दस रोज़ बन्द ! एक-आध दफ़ा मिले तो अपने अत्यधिक व्यस्त जीवन की बात बताते रहे—

"अमुक जगह के इतने ऑर्डर्स पड़े हुए हैं कि माल देना मुश्किल हो गया है । जब तक किसी चीज़ का मेन्युफेक्चरिङ्ग खुद न किया जाय बड़े-बड़े ऑर्डर्स का माल सप्लाई नहीं किया जा सकता ।"

फिर मुस्कराये—

"यह तो बिजनिस है, जो जितना लगाता है उतना ही मुनाफा पाता है ।"

और एक दिन घर आ कर बोले—

"अब तो शादी करने का विचार पक्का है । बिना जीवन सहचरी के काम नहीं चलता है । तुम हमारे लिये शादी का विज्ञापन तैयार करो आज ही अखबारों में भेज देंगे ।"

इतने हज़ार रुपये की मासिक आमदनी, स्वस्थ्य और व्यक्तित्व के विवरण के साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी के दैनिक पत्रों में उनकी शादी का विज्ञापन भेज दिया गया । इसके बाद मुझे विद्याध्ययन के सिलसिले में कलकत्ते जाना पड़ा । लगभग सवा साल बाद वापस शहर लौटा, तो दुकान को उनकी नदारत पाया । बाद में पता लगा मिस्टर रोमेशचन्दर की शादी हो गयी है और वे अब लकड़ी के खिलौने बनाने का साझे में कारखाना

खोले हुए हैं । मैं शहर आकर फिर अपने काम में लग गया और उनके विषय में अधिक पूँछ–ताछ करने का अवसर नहीं मिला । लेकिन एक दिन अकस्मात उनसे बाज़ार में भेंट हो गयी । बड़े परेशान थे कहने लगे:—

"काठ के खिलौने बनाने की जो कम्पनी खोली थी उसमें साझेदार एक दक्षिणी ब्राह्मण था, उसने बड़ा धोखा दिया । मैंने उसके विरुद्ध अदालत में नालिश की है और उसी सिलसिले में कोर्ट जा रहा हूँ ।"

यद्यपि मिस्टर रोमेशचन्दर के अन्दर और बाहर अभावों ने घर कर लिया है–शारीरिक विपिन्नता और आर्थिक अभाव प्रमुख हैं । लेकिन उनकी योजनात्मक शक्ति अभी भी क्षीण नहीं हुई है–भावों में अभी भी प्रौढ़ता है–विचारों में अभी भी मौलिकता है, कल्पना में अभी भी बल है। और इस योजनात्मक शक्ति के आधार पर ही वे आज भी अपने को सबल अनुभव करते हैं, कोई ऐसा अनुसन्धान करना चाहते हैं कि परिचत सुनें और दाँतों तले अंगुली दबा लें–घर वाले देखें और उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कह उठें–काम तो यह लाजवाब हुआ है ।

और जनाब, इस सबके लिये आपको मिस्टर रोमेशचन्दर की भविष्यगत् प्रगति के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

———————

पंडित मातादीन सुकुल

पंडित मातादीन सुकुल ने पुस्तकों का भारी गट्ठा जमीन पर पटक दिया और सिर थाम कर बैठ गये । उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर थकान और चिन्ता के चिन्ह स्पष्ट थे । उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे उनके अन्दर से तेल-रहित दीपक-सी, जीवन से संघर्ष करने की शक्ति चूक गई है और वे विवश होकर मंजिल के बीच में ही, आगे बढ़ने का विचार छोड़ कर बैठने के लिये मजबूर हो गये हैं । जीवन के चालीस बसंतों में से एक भी बसन्त ऐसा नहीं आया, जिसमें सुख की—तृप्ति की, निश्चिंत होकर साँस ली हो और अपनी स्थिति के प्रति सन्तोष प्रकट किया हो । आर्थिक अभाव और मानसिक क्लेशों ने उनके विश्वासों और भावनाओं के दर्पण को धुँधला और आभाहीन बना दिया था, जिसमें निजी विश्वास भी कुरूप होकर—अस्पष्ट होकर प्रतिछाया में विकृत और भयावह लगते थे । ऐसे, जिन्हें देख कर वे चौंक पड़ते थे—विकम्पित हो उठते थे । आज असमय ही जो उनका चेहरा झुर्रियों से भर गया है, आँखों में बारिश के पानी-सा मटियाला धुन्ध छा गया है, शरीर में शक्ति की अक्षीणता के कारण कमर किसी वृक्ष की सूखी डाल-सी एक तनाव देकर झुक गई है—चालीसवां पार करते-करते ही जो उनके सिर के बाल "खिचड़ी" हो गये हैं; यह सब ऐसे सजीव प्रमाण हैं कि इन्हें जीवन में अपने स्वप्नों, अपने विचारों और

कल्पनाओं को लेकर आशा से अधिक संघर्ष करना पड़ा है। लेकिन इस संघर्ष के एवज में उन्हें सदैव हाथ लगी है असफलता और पराजय ! इस असफलता और पराजय ने आज उन्हें थका दिया है—अपने निजत्व के प्रति अविश्वास करने के लिये विवश किया है।

पंडित मातादीन सुकुल वैसे ही माथा थामे बैठे रहे। वे उन क्षणों में ऐसे लगते थे, जैसे किसी पुरातन रोमन संग तराश ने दुःख और चिंता की भावना को मूर्त रूप देने के लिये अपनी कला प्रयुक्त की हो और कला प्राणवान हो उठी हो। उन्होंने कीचड़ से भरी आँखों पर से चश्मा उतारने के लिये कान से डोरी खोली, जिसे उन्होंने कमान के अभाव में अपने कानों में बाँध रखा था, और उसे उतार कर उसके पत्थर के शीशों को कुर्ते से पोंछने लगे। उस समय अनेक विचार उनके हृदय को मथ रहे थे। जिस असफलता और पराजय ने उन्हें पंगु बना दिया था, वह भावना आज प्रबल हो उठी थी। संयम, संकल्प और धैर्य जैसे ये शब्द—ये विचार-धाराएँ उन्हें खोखली और निर्जीव दिख रही थीं, जैसे इनका ढाँचा तो मौजूद है लेकिन न तो इनमें प्राण हैं और न माँस, जिनके संयुक्तीकरण से "रूप" बनता है और आत्मा निखर आती है वे सोच रहे थे जीवन में दिनों की कितनी प्रमुखता है और वे कितने कठोर हैं ! और इन दिनों की कठोरता तथा परिस्थितियों की विषमता आज इनके लिये असह्य हो गई है। जब से उन्होंने होश सम्हाला स्वयं को एक पुस्तक-विक्रेता के रूप में ही पाया है। आरम्भ में पिता की मृत्यु के पश्चात्, जो एक बार बाज़ार में जीवन-यापन के लिये हनुमान-चालीसा, शिव-चालीसा, किस्सा तोता-मैना, चहार-दरवेश, बड़ा

इन्द्रजाल, एक रात में सौ–सौ खून आदि पुस्तकें, उन्हें; उनके पिता से विरासत में मिली थीं, उन्हें बेचने निकले, सो आज तक पुस्तकों के मायाजाल से न निकल सके।

पंडित मातादीन सुकुल के पिता, पंडित देवीदत्त सुकुल भी एक पुस्तक–विक्रेता ही थे। लेकिन वह समय उनके कहने के अनुसार अच्छा था। "भक्ति" तथा मनोरंजक किस्सों की पुस्तकें पलक मारते, इस गाँव से उस गाँव तक जाते–जाते, समाप्त हो जाती थीं। इस व्यवसाय से उन्होंने सत्तर वर्ष तक जीवन–यापन किया था और आनन्द पूर्वक अपने परिवार की नौका खेते रहे थे। यही मन्त्र वे अपने सुयोग्य पुत्र को दे गये थे, कि वे 'भक्तमाला' की पुस्तकें और तुलसीदास की रामायण बेचें और चैन किये जायें। पडित मातादीन सुकुल ने अपने पिता की इच्छा का अक्षरशः पालन किया था। लेकिन आरंभ में जो उन्होंने पुस्तक–विक्रेता से एक प्रेस के मालिक और पुस्तक–प्रकाशक होने के मानचित्र में अपनी कल्पना के सहारे रंग भरा था, उसे अधिक से अधिक परिश्रम और पिता के इस व्यवसाय में सफलता पाने के बतलाये गये 'गुरों' के बारम्बार प्रयुक्त करने पर भी सार्थक न कर सके। आज इस अधूरे मान–चित्र को देखकर वे निरुत्साहित हो गये- वैराग्य–सा उनके अन्दर, अपनी कर्मटता की निरीहता को लेकर जागरूक हो उठा था, जिसनें केवल भाग्य पर भरोसा करने की ओर इंगित किया था। वे अपनी सोचने की गति के साथ आगे बढ़ गये। अपनी स्थिति को सुधारने के लिये–अपने व्यवसाय को चमकाने के लिये उन्होंने क्या नहीं किया था? महीनों वे अपने गले में हारमोनियम लटकाये–गाँव–गाँव में राधेश्याम रामायण के द्रुत–विलम्बित

छँद और सोरठों का पाठ करते और रामायण बेचने का कार्य सम्पन्न करते निकाल दिया लेकिन भाग्य—लक्ष्मी न तो इनके इस द्राविड़ी प्राणायाम् को देख कर प्रसन्न ही हुई और न मुस्करा कर इन्हें निहाल ही किया। बस जीवन के दिन किसी प्रकार लस्टम—पस्टम बीतते गये। सुबह से शाम तक ये गाँवों में चक्कर लगाते—चौपालों में बैठ कर संगीत—नौटंकी नाथूराम शर्मा हाथरसवाले की बाँच कर सुनाते लेकिन पुस्तक खरीदने वालों की संख्या कभी एक-दो से अधिक न निकलती। उस समय जो निराशा का भाव उनके चेहरे पर घना हो जाता, वह उनके स्वप्नों को भंग कर देता। लेकिन वहीं; वे एक चतुर चित्रकार की तरह उसी क्षण दूसरे रेखा—चित्र का सृजन कर डालते और भविष्य में सफलता की कल्पना कर आत्म-सन्तोष पाने का यत्न करते। इस तरह वे तिनके के सहारे जीवन के प्रांगण में आगे बढ़ते गये।

पंडित मातादीन सुकुल ने दुःख से, वेदना से कातर होकर, एक दीर्घ स्वाँस ली, जैसे जो कुछ वे सोच रहे हैं, उसमें दुःख ही दुःख है—पीडा ही पीड़ा है। पुस्तकों के उस भारी गट्ठर को, जिसे उन्होंने खीझ कर ज़मीन पर पटक दिया था, उसे सम्हाल कर अपनी पीठ के नीचे लगा लिया और विश्राम लेने के लिये उससे टिक गये। इस उम्र में उन्हें थोड़े विश्राम की आवश्यकता प्रतीत होती है। लेकिन जीवन में विश्राम के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है—जिस श्री—सम्पन्नता की आवश्यकता होती है, उनका तो कहीं चिन्ह तक भी वे अपने संयुक्त नहीं पाते। वे फिर सोचने लगे:—

'कल्पना की और विचारों की कैसी विडम्बना है? जैसे कर्मण्यता और शक्ति के बावजूद भी सब कुछ निरर्थक है—कुछ नहीं है।"

अपने इन विचारों को लेकर वे नाटकीय ढंग पर विद्रूप कर उठे। उनके सामने एक दूसरे पुस्तक–विक्रेता की आकृति आ गई। फुसफुसाहट में उन्होंने कहा—

"और रामहेतु मिसुर!"

अपने विचारों के साथ–साथ वे सोचते गये—रामहेतु मिसुर आज किताबों की बदौलत ही हजार पति होगये। चन्द्रकान्ता, रॉबर्ट ब्लेक, गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी की "कटे मूड़ की दो–दो बातें", बेचते–बेचते ही रुपयों का ढेर लग गया। बनारस के चौक में 'पुस्तक भंडार,' गोमती प्रेस और ..और...! और यही मिसुरजी अभी दस बरस पहले हमसे ही पुस्तकें कमीशन, दर–कमीशन लेकर बेचा करते थे, पन्द्रह प्रतिशत और बीस प्रतिशत! और इतने ही दिनों में वे मुद्रक–प्रकाशक हो गये, थोक पुस्तक–विक्रेता हो गये और अब तो सुना है कि कोई जासूसी मासिक पत्रिका का प्रकाशन और सम्पादन करने जा रहे हैं।

उन्हें लगा कि रामहेतु मिसुर को लेकर वे जो कुछ सोचते हैं, उसके साथ ही कुछ भारी चीज उनके गले में फँसती जा रही है। यह मिसुरजी .....! एक ईर्ष्या का भाव उनके अन्दर उदय हुआ। प्रतिस्पर्धा में वे मिसरजी को मात नहीं दे पाये। किताबों के बीजक बनाने, पुस्तकों पर कीमत बढ़ा कर बेचने और शिक्षा–विभाग में क्लार्कों से लेकर इन्स्पेक्टरों तक को विमोहित करने के गुण में उन्हें जो सफलता प्राप्त हुई थी, उसकी कल्पना कर सुकुलजी एकदम तिलमिला उठे। उन्हें लगा जैसे इस संसार में मिसुर रामहेतु से बढ़ कर कोई दूसरा ढोंगी और पाखंडी नहीं। सवा दो

प्रतिशत क्लार्कों को और तीन प्रतिशत सहायक निरीक्षकों को...और बस सोलह आने फतह ! किताबें हैं कि धड़ल्ले से स्कूल के पुस्तकालयों के लिये खरीदी जा रही हैं। दस–पाँच पुस्तकें मुँशी प्रेमचन्द की और बाकी तमाम दुनिया का इकट्ठा किया हुआ कूड़ा–कर्कट ! उन्होंने फिर मुँह बिदकाया। जैसे यह सब कुछ अरुचिकर है—घृणित है। लेकिन रामहेतु मिसुर और उनकी सम्पन्नता तो एक सत्य है। बनारस के चौक में पुस्तक भंडार और गोमती प्रेस ! ये सब एक कठोर सत्य की तरह विद्यमान हैं। फिर क्या घृणित है और क्या असत्य है ? सुकुलजी को लगा जैसे यह सारा संसार और जीवन में प्राप्त होने वाली सफलता सभी कुछ धोखे पर—दूसरे की आँखों में धूल झोंकने पर अवलम्बित है। तभी तो अश्लील पुस्तकों और गंदे प्रकाशनों के दस–दस संस्करण रामहेतु मिसुर बेच लेते हैं और अच्छी पुस्तकें अलमारियों में रखे–रखे—गट्ठों में बँधे–बँधे, मिट्टी हो जाती हैं। उन्होंने फिर बड़े मोह से अपने पीछे मुड़ कर पुस्तकों के गट्ठर की ओर देखा, जिसमें गीता-प्रेस, गोरखपुर की गुटका रामायण, वेंकटेश्वर प्रेस के भक्तमाल के प्रकाशनों से लेकर "गंगा पुस्तकमाला" के प्रकाशन "ख्वास का विवाह" और "कुल्ली भाट" आदि सभी बँधे हुए थे। फिर उन्हें पटना के ग्रंथमाला कार्यालय के संचालक पं० रामदहिन मिश्र का स्मरण आ गया, जिन्होंने परिश्रम से एक मामूली–सी मुदर्रिस से प्रेस, प्रकाशन आदि क्या नहीं कर लिया ? इस बार वे हँसे। सोचा, परिश्रम करके भी आदमी बनता है। लेकिन अब तो जमाना तंग होता जाता है। बड़े–बड़े लेखक तक न तो अब स्वान्तःसुखाय रचना करते हैं और न प्रकाशक ही उनकी रचनाएँ प्रकाशित करने के लिये तैयार

हैं। हरेक प्रकाशक ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करना चाहता है जो पाठ्य-क्रम में लग सकें-स्कूल और कॉलेजों के पुस्तकालयों में खप सकें और खना-खन पैसे आते जायें। एक विचार आया, पैसा कमाना कठिन भी है और सरल भी ऐसा है कि रामहेतु मिसुर अपनी तिकड़मों से सफलता पा गये। कठिन इतना है कि अधिकाधिक परिश्रम करने पर भी वे सफलता से इतनी दूर रहे, जैसे पुण्य से पाप! उन्हें याद है एक स्कूल के पुस्तकालय में सौ रुपये की पुस्तकें लगाने में उन्हें किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। स्कूल के क्लर्क ने कहा:—

"सुकुलजी, क्या कमीशन दिलवाओगे?"

हेड मास्टर ने आत्मीयता का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा था:—

"देखो सुकुलजी, सौ रुपयों की पुस्तकों का ऑर्डर दिया है। इसमें तुम्हें 'नेट' फायदा चालीस रुपयों का है। हाँ, देखो कुछ बालकोपयोगी पुस्तकें बच्चों के लिए दे जाना।"

और जब तक पुस्तकें हेड मास्टर तथा कमीशक क्लर्क की गाँठ में नहीं पहुँच गया, न तो उनके बिल का पेमेन्ट हो सका और न पुस्तकें रजिस्टर में दर्ज की गईं। सुकुलजी इन घटनाओं से और आगे बढ़ गये। बड़ा विचित्र जमाना आ गया है। लोग महात्मा गांधी के नाम पर ही इधर-उधर से उनके भाषण, संस्मरण और न जाने क्या-क्या छाप कर रुपया बटोरने में लगे हैं। नाम रख दिया "गांधी-साहित्य" और बेच रहे हैं आत्म-प्रवंचना से पूर्ण अपने संस्मरण! जैसे इस "गांधी-साहित्य" और उसके प्रकाशकों को लेकर पुनः उन्हें एक उबकाई-सी आई। भाव था यह

अ-पाचक चीज को पाठक कैसे हज़म कर रहा है ? कहा जाता था कि जैसे ही देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई कि हिन्दी में मौलिक ग्रंथों का ढेर लग जायेगा। लेकिन आज तो देश में दूसरी मनोवृत्ति ही काम कर रही है। और हरेक बस धोखे से—प्रपंच से दूसरे के धन पर साँप की तरह बैठ जाना चाहता है। मौलिक पुस्तकों के रचयिता आजीविका—अर्जन के लिये दफ़्तर की बाबूगिरी में नाथ दिये गये हैं, या फिर पाठय—क्रम में लगने वाली पुस्तकें लिखने के लिये विवश किए गये हैं। एक रुपया प्रति पृष्ठ पर सैकड़ों लेखक प्रभाकर—प्रवेशिका और विशारद—समीक्षा लिखने के लिये तैयार हैं। देश के बड़े-बड़े प्रकाशनों को "गाँधी—साहित्य" की लूट फुर्सत से नहीं है।

पंडित मातादीन सुकुल ने अपने सीमित ज्ञान से अभिभूत होकर अपनी गर्दन में झटका दिया; जैसे गाँधी के नाम पर यह गाँधी के अनन्य भक्त जो व्यवसाय कर रहे हैं और रुपया बटोरने में सलग्न हैं; गाँधी के हत्यारे हैं—जनता के शोषक हैं। और ..और...! सुकुलजी के विचारों को भारी धक्का लगा। दुःख और शोक से उनका हृदय भर गया, उन्हें सम्भवतः अपने विचारों के साथ यह दुनिया ही नहीं जच रही थी, जिसमें घृणा थी—स्पर्द्धा थी और जिसमें दूसरों को लूट कर अपनी जेब भरने की भावना निरन्तर काम करती रहती है। इसमें रामहेतु थे और रामदहिन मिश्र थे—भाग्य था और दुर्भाग्य था। ऐसे-ऐसे पुस्तक—विक्रेता थे जो "दिल्ली का दलाल," "लखनऊ की महाराजिन" और "बड़ा कोकशास्त्र" बेच कर महावारी तीन सौ पैदा कर लेते थे और वे ईमानदार पुस्तक—विक्रेता भी थे, जो तुलसीदास की गुटका रामायण, हनुमान—चालीसा, शिव—चालीसा

था कि प्रथम श्रेणी का मनोवैज्ञानिक और सत्-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तकें बेच कर भी साठ रुपया प्रति मास नहीं डाल पाते थे। सुकुलजी ने फिर मुँह बिदोरा और मन की अरुचि व्यक्त की। सम्भवतः वे पुस्तकों के उस गट्ठे से टिके सोच रहे थे कि यह दुनिया इसी प्रकार चलती रहेगी। कल भी अपने क्रम से—अपनी गति से चली थी और आज भी अपनी कुरूपताओं को लिये असाधारण, पशुत्वपूर्ण भावनाओं को लिये चल रही है। और रहा "सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्," उसकी कल्पना दार्शनिक, कवि और लेखक चिरन्तन-काल से करते रहे हैं। उन्होंने कल भी की है; आज भी कर रहे हैं और निःसन्देह आने वाले "कल" में भी करते रहेंगे।

ऐमुन्न-तैमुन्न-तिरकट्टा

बीसवी सदी के आरम्भ की बात है । आगरा में एक थे ऐमुन्न, दूसरे थे तैमुन्न, तीसरे थे तिरकट्टा । समकालीन लोगों का, पड़ोसियों का, मित्रों का—सबका यह विश्वास था पहले और दूसरे के जोड़ तथा तीसरे के संयुक्तीकरण से महाशय तिरकट्टा का व्यक्तित्त्व निखर पाया है, यानी पहले के शारीरिक समभाव, अवस्था की समानता और विचारों के एक लय होने से तथा उम्र में कमसिन तैमुन ! लेकिन शीशम की सूखी लकड़ी–सी अकड़, अहम्भाव और अपराध मूलक विचारों के सामन्जस्य से उनका निर्माण हुआ है । और यह त्रिगुट्ट था जो आगरा में प्रभावशाली बनना चाहता था—ऐमुन्न वकील थे तैमुन्न उनके बड़े पुत्र थे, वे भी वकील थे । पिता ने मुवक्किल से कहा, चोरी करवाओ, पकड़ जाने पर हम तुम्हारी मुफ्त पैरवी करेंगे । तैमुन्न ने मुवक्किल को उत्साहित कर कहा—

"सिर्फ चोरी नहीं—डाका डालो, खून करो, नकब लगाओ ! लेकिन हिस्सा हमारा भी रहेगा और हम तुम्हारी आपदा में सहायता करेंगे। जमानत देंगे, अदालतों में जाकर मुकदमा लड़ेंगे—तुम्हारा बाल बाँका न होने देंगे ।"

मुवक्किल महाशय तिरकट्टा थे—छरहरी बेरिया की सूखी लकड़ी से मुख्तसिर ! उनकी छोटी–छोटी चीनियाँ आँखें, चेचंकरू चेहरे और मुखाकृति पर अनेकानेक झुर्रियाँ थीं। सिल्वटों से स्पष्ट दिखता था कि उम्र के पिचहत्तर वर्ष पार करते–करते उनके जीवन से विशद अनुभव, शहद में फँसी मक्खी–सा लिपट गया है। इस अनुभव के इतिहास में अनेक प्रकार के अपराधों की संख्या है—धोखा है—स्त्रियों को उड़ाने का धंधा है—अमीरों के लड़कों को बिगाड़ने की प्रक्रियाँ हैं। नवयुवतियों को गुमराह करने और गर्भपात कराने की एकसे–एक बढ़कर विधियाँ हैं। उन दिनों होम्योपेथिक चिकित्सा में लोगों का अधिक विश्वास था। जर्मनी के डॉ० हेनिमन, ने होम्योपेथ चिकित्सा प्रणाली को नई दिशा दी थी। एक अभिनव प्रयास था कि जरा–सी शक्कर असर करती है। चिड़ियों की बीट से भी सूक्ष्म गोली बीमारी में उतार–चढ़ाव लाती है। लोगों ने सुना--लोगों ने देखा--आश्चर्य से, कौतूहल से ! लेकिन महाशय तिरकट्टा यह सब देखकर न तो आश्चर्य से चिहुंक उठे न कौतूहल से "उफ" कर सके ! वे सिर्फ मुस्कराए—वे सिर्फ हँसे ! लेकिन दूसरे दिन लोगों ने अवश्य आश्चर्य से—न होने वाले विश्वास से शहर की एक सड़क पर दो लाइनों का बोर्ड लगा देखा—

"डॉ० तिरकट्टा, ए०, एम० बी० एस० एक्स (जर्मन) वाई यू० डी० एल० आई० ओ० (लन्दन) एल० बी० एस० (अमेरिका)

नीचे की पंक्ति पर लिखा था—

"यहाँ गुप्त रोगों का पोशीदा तौर पर इलाज होता है। बहिने और देश के नौनिहाल आ कर फायदा उठाएँ।"

पास की दूसरी दुकान पर एक दूसरा साइन बोर्ड बोर्ड था:—

'होम्योपेथ विश्वविद्यालय—प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा !" और वे ही डिग्रियाँ—मर्ज में विशेषज्ञ होने का विवरण ! असफल विद्यार्थियों ने—बेकार नवयुवकों ने और धंधे के अभाव में मटर—गश्त करते हुए प्रौढ़ों ने उस विश्व—विद्यालय का तथा प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा की सुलभ शर्तों का साइन बोर्ड देखा। उन्होंने देखा कि डॉक्टर बनना कितना सरल है। एक डिग्री प्राप्त करने के लिए लोग-बाग जीवन खपा देते हैं,और यहाँ डिग्रियों का मुक्त हस्त होकर दान किया जाता है, भारत की ही नहीं,इंग्लैण्ड, अमेरिका और जर्मनी की भी ! और डॉ० तिरकट्टा का विश्व—विद्यालय चल निकला। छोटी—सी दुकान में चार—पाँच बेंच थीं, बीच में प्रिंसिपल डा० तिरकट्टा की मेज थी। मुल्तक्षिर से शरीर पर कुछ ऊँचा—ऊँचा—सा पेन्ट, हनी—बी के समान औष्ठ प्रदेश से फिट की हुई, कटी—छटीं मूंछें, कनपटी के पास का हिस्सा बैठा हुआ, माथा चौड़ा कम, लेकिन खुला हुआ, पस्ता क़द, अधिक धूम्रपान से सियापा लिए हुए ओंठ, गले में कलफ लगा हुआ कॉलर और उसमें रेड सिगनल की सूचक टूलिया, बेतुकी—सी, ढीली गाँठ की टाई, मांस के अभाव में उनके गालों के पास की हड्डियाँ, दीवाल से चूने का पलस्तर गिर जाने के पश्चात दिखने वाले पत्थरों—सी उभर आई थीं। वाणी उनकी महीन थी और उनके बोलने से ऐसी आवाज निकलती थी जैसे दूर पीतल का बरतन गिरकर ठन—ठना रहा हो।

कुछ दिन तक विश्व विद्यालय चलता रहा और काम चलता रहा। पचास रुपए में डिग्री, चालीस में ! तीस में !! शहर में एक और अनेक

होम्योपेथ डॉक्टर अवतीर्ण हो गए। लेकिन ज्यों–ज्यों होम्योपेथ डॉक्टरों की संख्या बढ़ती गई, विश्व विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या घटने लगी। इधर विद्यार्थियों की संख्या घटी, उधर डिग्रियाँ और अधिक सुलभ व सस्ती हो गई। प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा ने देखा कि जनता की, नौजवानों की आत्मा इस धंधे की ओर से गिरती जा रही है, तो उन्होंने डिग्रियों का भाव और भी गिरा दिया। आगरा शहर के निवासियों का कहना है:—

"डॉक्टरी पास करने व डिग्रियाँ प्राप्त करने का वह भी स्वर्ण युग था। पाँच रुपए! और डॉक्टर तिरकट्टा के विश्व विद्यालय से तुरन्त डॉक्टरी में उत्तीर्ण होने की डिग्री।

लेकिन जब गुप्तकालीन स्वर्ण–युग अधिक न चल सका, डॉक्टरी पास करने की डिग्रियों का स्वर्ण–युग ही कैसे अनन्त और शाश्वत की रेखाओं को पकड़ पाता? डॉ० तिरकट्टा ने होम्योपेथ के लाभ बतलाते हुए अपने मित्रों में प्रचार करना आरम्भ किया लेकिन उससे वे लाभान्वित न होसके। विश्व विद्यालय बन्द हो गया।

इस विश्व विद्यालय के बन्द होने के पश्चात ही जब वे दूसरी योजनाओं को मूर्त रूप देने के लिये यत्नशील थे कि उनका परिचय ऐंमुन्न से हो गया। वे शहर में वकील थे लेकिन वकालत चलती नहीं थी–परेशान थे। और उनकी यह परेशानी और भी बढ़ गई जब कि जीवन में साठ की सीमा पार करते–करते उन्होंने अनुभव किया कि अभी तो वे हृदय से युवा हैं—वासना की मदिरा अभी भी उनकी आँखों में है। इधर उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि उनका विधुर–पन एक अभाव–सा—एक

खोखलापन–सा, जीवन की निस्सारिता को लेकर अनुभव करने लगा। कुछ अन्तरंग मित्रों ने कहः—

"मुन्शी, ऐमुन्न भाई! हमसे तो तुम्हारी उदासी और जीवन को यूं पत्थर के ठीकरे–सा ठुकराना भला नहीं लगता। और अभी खुदा के फज़ल से तुम्हारी उम्र ही कितनी? माना कि तुम्हारे लड़के जवान हो चले हैं—माना कि आस–औलाद की अब तुम्हें मुतलक भी जरूरत नहीं है, फिर भी सोचो तो, जवान बीबी कितना बड़ा सुख है? जब तुम अदालत से दिन भर के थके–मांदे, घर लौटों और तुम्हारी जवान बीवी जिसकी जिस्म पर जवानी आम्र–बौर–सी लदी हो, आँखों में उसके शराब का–सा नशा हो और बाली उमरिया में सावन की भरी हुई नदी–सी बल खाती घर में निकल जाए, तो अरे भाई मुन्शी ऐमुन्न, तुम्हारी थकावट, यह दिल को दहला देने वाली उदासी, काफूर–सी न उड़ जाय तो बात नहीं।

"मुंशी ऐमुन्न ने पत्थर के लैंस के चश्मे को नाक पर ठीक से बिठाकर ओठों के पास फूंस के तिनकों–सी मूंछों को चबाते हुए कहाः—

"सच! क्या संभव है? लेकिन यह कम्बख्त जवान लड़के!" मित्र ने अपने दोनों हाथ उनके कन्धों पर थामते हुए आत्मीयता से विस्फारित आँखों से उनकी ओर देखते हुए कहाः—

"अमाँ, तुम भी क्या बात करते हो? यह लौंड़े किसके सगे! और बनाने व बिगाड़ने की तुमने इनकी भली कही। शादी कर लो फिर तुम्हीं देखना कैसी इनकी अक्ल दुरुस्त रहती है।"

ऐमुन्न हँसे। महीने पंद्रह रोज में किसी गरीब की लड़की ढूंढ ली गई, जिनकी कि इस देश में आर्थिक अभावों के कारण कमी नहीं होती। मुंशी ऐमुन्न पुनः विवाहित हो गए। लेकिन शादी के पश्चात ऐमुन्न से अधिक प्रसन्नता मिली उनके नौजवान तैमुन्न को। उनका युवापन अकउए के हुऊए-सा हल्का-फुल्का हो हवा में उड़ने लगा। खेल से विरक्ति, पढ़ाई-लिखाई से अरुचि, न हवाखोरी के लिए बाहर जाना, न मित्रों में घुलमिल कर बैठना! चौबीसों घटे घर भला या मुंशी ऐमुन्न की अनुपस्थिति में नौजवान तैमुन्न की अपने कमरे में चहल-कदमी; या नई-नवेली की ओर ताक-झांक भली! भला हो मनोवैज्ञानिक, सेक्स विशेषज्ञ फ्रायड का जो बाकायदा फरमा गए हैं कि वासनाओं का उभार जीवन में प्रबलतम होना अनिवार्य है, जो कि बनाए गए सामाजिक प्रति बंधनों को नहीं मानता। मानव है तो वासना है और यह वासना प्राकृतिक है—दुर्दमनीय है। बच्चों से लेकर उम्र रसीदा बुजुर्गवारों में भी वह सन्निहित रहती है—उसके अणु विद्यमान रहते हैं। तो साहब, मिस्टर तैमुन्न का आकर्षण घर की इस नवयौवना पर केन्द्रित हो गया। बुरी तरह वे शहद में फँसी मक्खी की तरह इस आसक्ति और रोमान्स के भँवर में फँस गए।

मुंशी ऐमुन्न ने देखा कि उम्र में उनसे कई गुना कम, यह कमसिन छोकरी उनसे अधिक उनके नौजवान तैमुन्न की देख-भाल में; मसलन उसके खाने-पीने, कपड़े पहनने और उसके कमरे की सजावट, किताबों को करीने से जमाने में समय व्यतीत करती है, तो उनकी आँखें क्रोध से, एक खीझ से ज्वालामुखी-सा लहवा उगलने लगीं। लेकिन चूँकि उनके जीवन के साथ

अनुभवों का इतिहास था, उन्होंने दुनिया का ऊँचा और नीचा होना देखा देखा था, उन्होंने अच्छे-भले लोगों को बदनाम किया था, और देखा था कि बदनामी कितनी बुरी चीज है, अतएव वह सब कुछ देखकर भी लहू के घूंट पीते रहे। उन दिनों उनका मन और मस्तिष्क दोनों साबुन के झागों-सा भरा रहता, जिनके कि कारण तह की वस्तु नहीं दिखती। लेकिन धीरे-धीरे उनके विवेक ने, उनके सोचने की गति ने, उनका मार्ग दर्शन दिया और वे इस निर्णय पर आ गए कि किसी न किसी प्रकार इस नौजवान, लेकिन बिदके हुए सावन के साँड़ से बरखुरदार को घर से खदेड़कर बाहर किया जावे। और साहबजादे एक हफ्ते के अन्दर शहर आगरा से दूर किसी ऐसे स्थान पर वकालत पढ़ने के लिए भेज दिए गये जहाँ किसी यूनीवर्सिटी की डिग्री कानून पढ़ने में बाधक नहीं होती। मुंशी ऐमुन्न ने तैमुन्न की रवानगी से कुछ दिन पूर्व उन्हें अपने पास बुलाकर कहा:—

"नूर चश्म, तुम हमसे बहुत दूर जा रहे हो। जहाँ तुम्हारे ऊपर मेरा साया न होगा। लेकिन बेटे, परदेश में अपने चरित्र की रक्षा करना—गिर कर सँभलना बड़ा कठिन होता है, तुम गिरने के पूर्व ही संभलो।"

लेकिन तैमुन्न को दुख इस बात का न था कि वे वकील बनने के लिए घर से और और अपने बूढ़े बाप से दूर जा रहे थे, बल्कि उन्हें जो कसक व टीस हो रही थी, वह इस बात की थी कि अब उनको विमोहित करने वाली उन मनहरण आँखों से दूर जाना पड़ेगा, उन्हें अपने स्वप्नों में वह दृश्य एक अभाव बनकर अखरा करेंगे जबकि उन्होंने घर में पदार्पण की इस नव

परिणीता जुही की कली–सी कोमल और कवि की कल्पना–सी यौवन-संपन्न युवती को अपने सशक्त हाथों में समेट लिया था और उसकी आकृति को अपने सीने से टिकाकर अपने ओंठ उसके अधरों पर रख दिये थे। वह कुछ खिन्न मुद्रा बनाती हुई लज्जा से छुई–मुई–सी सकुचा गई थी। और श्री तैमुन्न इस कल्पना और भावना के सागर में निहायत हल्के–फुल्के तिनके से हिलते हुए घर से दूर जा पड़े। मुंशी ऐमुन्न ने संतोष से, तृप्ति से एक साँस ली। भाव था, किस मुश्किल से इस गड़े हुए मछली के काँटे को मुंह के जबड़ों से निकाल पाया हूँ। शायद यह सोचते–सोचते वह अपनी सफलता पर हँस भी पड़े थे। लगभग एक वर्ष तक मुंशी ऐमुन्न के दिन श्री तैमुन्न की अनुपस्थिति में सानन्द बीतते रहे। हाईकोर्ट से लौटने के पश्चात वे आकर कमरे के पलंग पर औंधे पड़ रहते और नवयौवना पत्नी की ओर लालसा भरी दृष्टि से देखते हुए कहते:—

"अजी सुनती हो, जरा कमर तो दाब दो। कम्बख्त चुर्रा चला गया है या न जाने कौन–कौन सी नसें अपनी जगह से खिसक गईं हैं।"

और वह उम्र के बोझ से दबे,मर पर खल्वाहट बने, भेड़ की ऊन–सी भूरी, सख्त नीचे की ओर गिरी हुई मूछों समेत झुर्रियोंदार आकृत की ओर देखती, तो दूसरे ही क्षण श्री तैमुन्न का नौजवान चेहरा उसके सामने आ जाता और विगत के दृश्य उसके सामने साकार होने लगते; जबकि वासना से प्रतिहत हो श्री तैमुन्न ने अपनी आँखों में कामातुरता व्यक्त करते हुए उसे अकेले में खींच कर आलिंगनपाश में कुमुदनी में जकड़े हुए भौंरे–सा आबद्ध कर लिया था और धीरे से निस्तब्धता को भंग करते कह दिया था:—

"तुम मेरी जिन्दगी हो—तुम मेरी हो। मैं यह झूठे सामाजिक बंधन नहीं मानता। मेरी इन आदर्शों में आस्था नहीं है।"

लेकिन क्षणेक में यह सुख—स्वप्न भंग हो जाते—कल्पना क्षितिज के किसी एक भाग में बिजली—सी चमक कर हृदय—मानस में तिरोहित हो जातीं और यथार्थ की कटुता, उद्वेलित सागर की तरंगों—सी उसके मानस से टकरा—टकरा कर उसे सजग कर देती। उन क्षणों में व्यथित, क्लान्त, एक खाली बदली—सी वह उदास निस्वाँस लेकर 'पति' नाम की संज्ञा से संयुक्त मुंशी ऐमुन्न के पैर दबाने लगती।

दिन आगे बढ़ते गए और परिस्थितियाँ फिर मोड़ पर आ गईं। श्री तैमुन्न यूनीवर्सिटी की डिग्री के अभाव में भी वकालत की सनद मिलने वाले स्थान से सनद ले आए और वकील हो गए। इस बीच मुंशी ऐमुन्न काफी भूल गए थे। यानी उनके गाल बावजूद मोती और मूँगे के कुश्तों के प्रयोग के भी बैठ चले थे। और बड़ी—बड़ी विस्फारित आँखें उल्टी कौड़ी—सी पलट गई थीं। एक शून्य को लिए हुए भयानकता उनके अन्दर तिरने लगी थी। वाणी में विकम्पन आ गया था। वह जब जोर से बोलने की चेष्टा करते तो उनकी वाणी पीपल के सूखे पत्ते—सी दोलित हो भर—भर कर उठती थी। वे स्वयं अनुभव करने लगे थे कि उनके अवयव अब उनका साथ नहीं देते हैं। तो मुंशी ऐमुन्न ने जब सुना कि साहबजादे श्री तैमुन्न वकील बन कर एक साल के अन्दर ही आरहे हैं, तो इस संवाद से पहले उन्हें थोड़ा धक्का लगा लेकिन बाद को वे मुस्कराए—वे सोच रहे थे कि अब भयभीत होने का कोई कारण नहीं। वे शीघ्र ही ३० वर्ष पश्चात पुन: पिता बनने जा रहे हैं। नव-परिणीता को जो पुत्र होगा उसका नाम! और उनके सामने तेजी से श्री तैमुन्न

की लालसा भरी आँखें, जागईं, जिनमें उत्कंठा थी, प्रतीक्षा थी, स्वागत की भावना थी। श्री तैमुन्न घर आ गए, पिताने उन पर गृहस्थी का बोझ डालकर, कहा:—

"अब तुम जवान हो, घर की हालत से तुम अच्छी तरह परिचित हो। घर को मिटाना या बनाना सब कुछ तुम्हारे हाथों में है। मेरा हाथ बटाया करो।"

और श्री तैमुन्न पिता के साथ कचहरी जाने लगे। परन्तु उन्होंने कचहरी में देखा, हफ्तों निकल जाते हैं, और उनके हाथों में एक भी मुकदमा नहीं फँसता। पिता ने देखा कि श्री तैमुन्न की तबियत वकालत की ओर से उचटने लगी है और वीतराग का भाव उनके अन्दर सावन के खंड–खंड बादलों–सा, इकट्ठा होकर आच्छन्न होने लगा है। चूंकि उन्होंने दुनिया देखी थी इसलिए वे घबराए नहीं। तैमुन्न को बुलाकर कहा:—

"बेटा वकालत और हिकमत दोनों तिकड़मों से चला करती हैं। तुम सफल वकील तभी बन सकते हो जब कि तुम झूँठ और सच्चे मुकदमें बनाने में समर्थ हो। तुम घटनाएँ और परिस्थितियाँ उत्पन्न कर उन्हें मुकदमों का रूप दे सको।"

तैमुन्न ने बारीकी से पिता के बतलाए हुए 'गुर' का मन में विश्लेषण किया। और वे इस निर्णय पर आए कि उन्हें व्यक्तियों में अपराधात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना होगा। उन्हें चोरियाँ करवानी होंगी—डाके डलवाना होंगे, झूंठे मुकदमें चलवाने होंगे, लोगों की जेबें कतरानी होंगी। अपराधियों को इस बात का पूरा भरोसा दिलाना होगा कि

वे यदि पकड़े गए तो उनकी जमानत की, उनके मुकदमें में लड़ने की पूरी-पूरी व्यवस्था हो जाएगी। तैमुन्न, इस भाव के मन में आते ही विहँस उठे। जैसे तिमिराच्छन्न आकाश में कालिमा को बेधकर सूर्य की प्रखर रश्मियाँ उदित हो गई हों। जैसे महीनों उदासी और मायूसी से घिरा हुआ मरीज, स्वस्थ होकर जीवन में नई आशा, और उमंगें लेकर अस्पताल की चहार-दीवारी से बाहर आ गया हो। दूसरे दिन ही उन्होंने प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा को निमंत्रण किया। डॉ० तिरकट्टा अपने सफल योजनात्मक जीवन के कारण ख्याति प्राप्त कर चुके थे। तैमुन्न ने कहा:—

"डॉक्टर साहब! सौदा घाटे का न रहेगा। आप चाहें बेवड़ा (नकली शराब) खींचकर बेचो, चोरियाँ करवाओ, नकबजनी करवाओ, डाका डलवाओ, गर्भपात करवाओ, जेब कतराओ, गरज यह कि दुनिया भर के अपराध करवाओ, और अपनी इस प्रगति में, अपने कार्यों में एक उचित हिस्सा हमारा भी रखो, इस हिस्से के एवज में इस बात का हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि अदालत आपका बाल बाँका न कर सकेगी। हम आपत्ति आने पर आपकी ओर से मुकदमा लड़ेंगे, जमानत देंगे, आपके गुनाहों के सामने-आपके अपराधों के सामने ढाल बने रहेंगे। प्रिंसिपल डॉ०.तिरकट्टा ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। आगरा के निवासियों का कहना है कि उन दिनों शहर में ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अपराध करना कोई गुनाह नहीं है—कोई अपराध नहीं है। जेब कतरी जा रही है, मकानों में नकब लग रहे हैं, और अपराधी मौजें मार रहे हैं। प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा ने अपना सारा परिवार मोर्चे पर लगा दिया था और काम बाँट दिए थे।

कुछ को उन्होंने चोरी करने के लिए छोड़ दिया, कुछ को डाके के लिए, कुछ को जेब काटने के लिए और घर की स्त्रियों को शहर में व्यभिचार को प्रोत्साहन देने के लिए ! उन्होंने अपने जिम्मे जो काम रक्खा था वह था गुप्त रूप से शराब खींचना। उसकी गुप्त बिक्री की व्यवस्था करना, नौजवान, बिगड़े हुए लड़कों को जुए के लिए, व्यभिचार के लिए, मदिरापान के लिए प्रोत्साहित करना और इसके अलावा जो कार्य था वह था अपने परिवार वालों की सुरक्षा का प्रबन्ध करना, उनके फँस जाने पर झूठी गवाही तैयार करना, मुकदमें की उचित व्यवस्था करना। कार्य फैला और जब ऐमुन्न प्रसन्न, तैमुन्न निहाल व डॉ० तिरकट्टा की तो जिसे कहते हैं बाँछें खिलना, वह हाल !

लेकिन आज भी आगरा निवासी अपने छोटों को मुन्शी ऐमुन्न, श्री तैमुन्न और डॉ० तिरकट्टा के बारे में यह सब सुनाते हुए उदास होकर कहते हैं:—

लेकिन 'बेटा' जैसा अन्त, जिन परिस्थितियों में उनके जीवन का पटाक्षेप हुआ, भगवान न करे, वैसा किसी दुश्मन का भी हो। आखिर बुरे का परिणाम बुरा ही होता है। लेकिन लोग–बाग अँजाम की तरफ देखकर कब काम करते हैं ? वे सावन की हरियाली को शाश्वत और चिरंतन समझ बैठते हैं। जब कि सत्य यह है कि पाप को कब किसी ने फलते व फूलते देखा है ?"

कहते–कहते कहने वाला, एक दीर्घ उसाँस लेता, जैसे एक अत्यंत कुरूप, भयावह दृश्य उसके सामने आ उपस्थित हुआ है और उसके विहंगा-

वलोकन के साथ-साथ ही उसके अवयव विकसित हो उठे हैं—वह एक बारगी काँप उठा है। कुछ सँभल कर वह अपनी बात का अंत इस प्रकार करता:—

"परिस्थितियों ने पाँसा पलटा, शासन अधिक सक्रिय हुआ और अपराधों को प्रेरणा देने वाले तत्त्व ढूंढ़ निकाले गए। प्रिंसिपल डॉ० तिरकट्टा का सारा परिवार लम्बी अवधि के लिए जेल में ठूंस दिया गया। कुमारी कन्या गर्भपात् करने के अपराध में पकड़ ली गई और तिरकट्टा महाशय आर्थिक अभावों के बीच सिसक-सिसक कर जीवन से नाता तोड़ गए। पास पड़ोसी का कहना है कि मरते समय उनके पास कोई आत्मीय न था और वे गंगाजल की दो बूंदों की अभिलाषा लिए हुए इह् लीला समाप्त कर गए। उनसे बुरा हाल मुन्शी ऐमुन्न का हुआ। आँखों की उनकी रोशनी मद्धिम पड़ते-पड़ते बिलकुल विलीन हो गई—आँखों में कींचड़ और नाली के गंधे पानी-सी धुंध, कमर झुकी हुई, अशक्त। सुनते हैं कि श्री तैमुन्न ने उनकी इस दयनीय वृद्धावस्था के प्रति कोई सहानुभूति न रखी। उनके अंतिम दिनों में उनका सहारा एक टूटी चारपाई, और दो मिट्टी के सकोरे थे,एक में वे पानी पीते थे और दूसरे में उन्हें घर भर की जूठन इकट्ठीकर रख दी जाती थी। जवान बीवी ने उनकी ओर रझांकना भी बन्द कर दिया था। उसकी आँखों में श्री तैमुन्न को लेकर एक रंगीन कल्पना थी—वासना को लिए आसक्ति थी। कहते हैं कि जब मुन्शी ऐमुन्नने निराशा और कुरूपता को अपने जीवन में अंतिम रूप देते हुए दम तोड़ी, उस समय उनकी नवयौवना पत्नी श्री तैमुन्न के आलिंगन में आबद्ध थी—वासना उसकी आँखों में नर्तन कर रही थी—गात यौवन की सिहरन से थिरक उठे थे।"

अन्त में कहने वाला अपने दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप कर कहता:—

"और बेटा, श्री तैमुन्न का अन्त जितनी डरावनी स्थिति में हुआ है, उसकी बिना उनको देखे कल्पना करना भी दुर्लभ है। मुन्शी ऐमुन्न की मृत्यु के बाद जवान स्त्री को उन्होंने घर में डालकर दूसरा विवाह कर लिया। मुंशी ऐमुन्न की विधवा, नागिन–सी फुत्कार उठी। मुहल्ले में यह सत्य माना जाता है कि एक नीच जाति के नाई से संपर्क स्थापित कर उसने श्री तैमुन्न और उनकी पत्नी को ज़हर दे दिया। पत्नी चल बसी लेकिन तैमुन्न जीवित बच गए। तैमुन्न बचे तो लेकिन उनके शरीर में कुष्ट रोग फूट निकला—तेजी से उनका शरीर आरम्भ में कुष्ठ रोग के चितकबरे दागों से भर गया और फिर समस्त शरीर में गलाव भरना आरम्भ हो गया। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि श्री तैमुन्न के वमन से तीव्र बदबू आने लगी है, और सारा शरीर जैसे अधिक पके हुए आम–सा गिल–गिला हो गया है। बाद में उनके शरीर के अंग गल–गल कर गिरने लगे। उनकी उँगलियाँ सूखे पेड़ की ठूंठ फुनगियों–सी रह गईं। भौंड़ी और कुरूप, मुँह से दुर्गंध छोड़ती हुई लार–शरीर पर अनगिनत पट्टियाँ बँधी हुई। दिन भर वे सड़कों पर वधशाला की ओर घसीटकर ले जाते हुए पशुओं की तरह घिसटते रहते, कराहते रहते—एक बँधे हुए सर में वे चिल्ला–चिलाकर मांगते रहते:—

"दे दे राम, दिला दे राम,
लूलों के बस राजा राम।"

इसके बाद शायद कहने वाले का दिल दहल उठता और वह अपने से छोटों की ओर देखकर कहता:—

"और बेटा, कहा न ! बुराई कभी भली नहीं होती—कभी सुख नहीं देती। यह तो केवल मन का खाली भ्रम है कि दूसरे को नीचा दिखालो, दूसरे की आत्मा को दुखा लो, दूसरे को लूट लो, दूसरे को मिटा लो। लेकिन इसका अन्त.........।"

तीन दृश्य

(१)

सेठ माणिकचन्द विमलचन्द की दुकान का सराफा बाजार में बड़ा नाम है। दुकान खुलने से बन्द होने के समय तक लक्ष्मी यूं बरसती है ज्यों सावन में मूसलधार वर्षा होती रहती है। लक्ष्मी के आने में सेठजी का प्रयास कम लेकिन बुद्धि अधिक है। सेठ केवल दुकान के अन्दर वाले भाग में चांदनी-सी धवल और धुनी रुई-से मुलायम गद्दे और तकिये के सहारे भारी स्थूल शरीर टिकाये बैठे रहते हैं—थोड़ी दूर पर उनके फर्शी चांदी के हुक्के में 'तवा' भरा हुआ रखा रहता है और उसके धुंए में मुश्क और सौंधे खमीर की खुशबू उड़ा करती है। सोने की मुनाल को अपने मुंह में लगाकर वे कभी-कभी हल्का-सा कश ले लिया करते हैं। और उन क्षणों में उनकी पलकें अत्यधिक सुख के कारण अर्धोन्मीलित होजाती हैं। तभी बाहर बैठा मुनीम किसी ग्राहक की कपड़े की फर्द उसकी संख्या के अनुसार पढ़ने लगता है—"

'दस जोड़े मर्दानी धोती परमसुख, पाँच कैलीको की जनानी इकलाईयाँ, एक थान मलमल चौदह सौ चवांलीस, आदि . . आदि।"

तभी टेलीफोन की घंटी टन...टना उठती है । दूसरा मुनीम रिसीवर उठाता है ।

"हाँ बेची.. तीन सौ गाँठ खरीदी...नहीं...और ।"

'बेची' तथा 'खरीदी' के शब्दों से कमरा गूंज उठता है । सेठजी फिर सटक को जरा अपने नजदीक खींच कर हल्का-सा कश लेते हैं और अपनी आँखें मूंद लेते हैं--दुकान का क्रम चलता रहता है ।

×——×——×

(२)

गतिमय जीवन.. विकम्पित वातावरण...यौवन...संगीत और उच्छ्वास ! तबलची ने 'सम' पर ताल दी और नवयुवती के हवा में दोतिल कैथ-फल-से सुडौल उरोज थिरकर स्थिर हो गये । नूपुर एक लय के साथ 'छम' कर, एक क्षण के लिये रुके—आसव सिक्त नवयुवती के मनोहर बड़े-बड़े नेत्र, बंकिम भ्रूक्षेप के साथ सेठ माणिकचन्द के स्थूल काय शरीर पर रुके—उसका ओष्ठ-प्रदेश कुछ विस्तृत हुआ—कमर, अधिक फलों से लदी टहनी-सी झुक गई और नेत्र मौन संदेश दे गये । सेठजी खिल उठे-'वाह' और 'वाह'.. 'वाह' से अन्य साथियों ने कमरा गुंजा दिया । सारंगी वाले ने फिर अपने वाद्य में गति दी--तबलची की अंगुलियाँ फिर तबले पर गतिमान हुई और नवयुवती का नितम्ब-भाग तरंगित लहरों-सा उठने और गिरने लगा । नृत्य अपनी परा काष्ठा पर आया—युवती ने एक लम्बी फिरकिनी ली और आहत पंछी-सी सेठजी की गोद में जा गिरी ।

(३)

डाक्टर ने अपने अनुभवी नेत्र सेठ माणिकचन्दजी की भयभीत आकृति पर जमा दिये और फिर सधे हुए और शान्त स्वर में कहा:—

'सेठ साहब ऑपरेशन कराना होगा'।

सेठजी ने तभी अपनी धोती का अगला भाग रगड़ते हुए असहनीय पीड़ा से कराहते हुए कहा:—

"इस...स...सिच ! बिना चीर-फाड़ के काम नहीं बनेगा।"

और उन्होंने वेदना से विवश होकर सिसकारी भरी—फिर धोती के अगले भाग को दोनों हाथों से रगड़ा और उनकी आँखों में आसू छलक आये। डॉक्टर ने फिर कहा:—

"मैने परीक्षा की है। यह आपकी धोती के मवाद के पीले दाग—यह साजिश और जलन ! उर्फ !!"

और डाक्टर यथार्थ को कल्पना से भरने लगा। सेठजी ने मनोवेदना से सिर हिलाया—

डाक्टर साहब ने सांत्वना के रूप में पीठ थपथपाई। सेठजी की आँखों से उस समय भी 'अश्क' धारावाहिका रूप से बह रहा था। साथियों ने सेठ को उठाया और अस्पताल से बाहर आ गये।

तीसरे दिन सेठ माणिकचन्द अपनी असहाय वेदना और पीड़ा को लेकर अपनी जीवन-यात्रा को पूरी कर गये। आज उनके बारे में अनेक मत हवा में हैं। लेखक उन मतों और दृष्टिकोणों के विषय में मौन रहना चाहता है।

महाबली पं० दत्तू जमखंडीकर

महाबली पं० दत्तू जमखण्डीकर हमारे मोहल्ले की शोभा हैं । इस 'शोभा' शब्द के साथ जिस गरिमा का गठबन्धन है, महाबली उसके प्रतीक हैं । जिस तरह बाहर से आये हुए किसी मित्र या सम्बन्धी को घर की सबसे अद्भुत या बेश कीमती चीज़ दिखलाने का साधारण गृहस्थ लोभ संवरण नहीं कर पाता उसी प्रकार जब कभी कोई मेरे मित्र या परिचित बाहर से आकर हमारे यहाँ ठहरते हैं, तो हम उन्हें महाबली पण्डित दत्तू जमखंडीकर के दर्शन कराने का अवसर कभी भी हाथ से नहीं जाने देते । और हमें मोहल्ले की इस शोभा पर गर्व है कि हमारे मित्रों और परिचितों में, जिन्हें हमने मिलाया कभी उन्होंने उनके महाबली पद'के विषय में आलोचना नहीं की । महबली से मिलने के बाद वे उस मुलाक़ात की स्मृति को सुरक्षित अपने साथ ले गये हैं और जब कभी फिर उनसे हम मिले हैं तो उन्होंने महाबली के कुशल क्षेम की बात अवश्य पूँछ ली हैं ।

हमारे महाबली पण्डित दत्तू जमखण्डीकर ने किसी अखाड़े के उस्ताद की न तो कभी शागिर्दी की है और न नित्य नियम से किसी खुले मैदान में डण्ड–बैठक और मुगदर फेरकर ही शरीर को लोह-सम बनाने की चेष्टा की है; फिर भी वे लंगोट भरपूर कसा हुआ अवश्य बांधे रहते हैं ।

अब आप ज़रा उनके शरीर गठन पर ग़ौर कीजिए—आपने किसी पुराने डाक्टर की दुकान पर हड्डियों का ढाँचा अवश्य देखा होगा, जिसके द्वारा वह अपने मरीज़ को हड्डियों के जोड़ और हड्डियों के एक दूसरे से लगाव की व्याख्या कर मरीज़ के सम्बन्धी या मरीज़ की जिज्ञासा को शान्त करता है। हमारे महाबली का स्वास्थ्य भी इतना ही भरपूर है—यदि उनके ढाँचे पर काली, मांसरहित, आबनूस-सी चमड़ी और काले बीकानेरी भेड़ की ऊन से रोएँ न जमें हों, तो आसानी से महाबली किसी डाक्टर की दुकान की शोभा बढ़ा सकते हैं। यदि पण्डित दत्तू जमखण्डीकर का शब्द-चित्र खींचा जाय तो इस प्रकार होगा...महाबली के सीने की कड़ियाँ जो शक्ति के लिये स्थानाभाव के कारण ऊपर उभर आई है, वर्णमाला का विद्यार्थी भी आसानी से गिन सकता है! अस्थि पञ्जर के ढाँचे पर मात्र काली खुरदुरी खादी-सी चमड़ी मढ़ी हुई है; जिस पर देशी कम्बल की काली ऊन-से बाल चिपक गये हैं। उनके गाल महाबल के अनवरत प्रदर्शन तथा कर्मण्यता की सार्थकता के कारण काफी पिचक गये हैं और चेहरे की हड्डियाँ ऊपर को उभर आई हैं—भौंयों के नीचे गड्ढों में छोटी-छोटी चीनी आँखें अपना पर्याप्त सुरक्षित स्थान ढूँढकर घुस गई हैं और उनमें से पुतलियाँ जुगनू-सी आभा दमका-दमकाकर दूसरों को उस ओर देखने की प्रेरणा दिया करती हैं। उनकी भँवें काली और घनी हैं,जो इम्फाल के घने जंगलों से भी अधिक भयानक लगती हैं। इस कर्मवाद के महा बलवान् योद्धा और योजना-शास्त्र के प्रकांड पण्डित का प्रशस्त ललाट मात्र पौने दो इञ्च का है। उसे देखकर उनके प्रशंसकों को हैरत होती है कि कैसे सिरजनहार ने गागर में सागर

भर दिया। उनके मस्तिष्क की उर्वरा भूमि से निकली हुई मौलिक कल्पनाओं की मधुरिमा पर जहाँ लोग सँपेरे की बीन पर नृत्य करते भुजङ्ग-से डोलने लगते हैं; वहाँ इस उर्वरा भूमि-भाग की न्यूनतम लम्बाई पर भला कौन न आश्चर्य प्रकट करेगा? इस ललाट से जो ऊपर का क्षेत्र है वह एकदम हॉकी खेलने की फील्ड-सा साफ और चिकना है, यानी पण्डित दत्त जमखण्डीकर अपनी विद्वत्ता की प्रकाश-रश्मियों को प्रसारित होते रहने के लिए अपना सिर, बीच में मात्र गोलाकार चन्दोवे को छोड़कर उस्तरे से मुड़ा हुआ चिकना रखते हैं। इस चन्दोबे से गोलाकार के बीच में एक हाथ लम्बी धर्म-ध्वजा-सी चोटी लहराया करती है। महाबली के चुसे हुए आम-से पिचके गालों तथा ठोड़ी पर दाढ़ी उपजाऊ भूमि में खड़ी हरी-भरी खेती-सी जम गई है। कभी यह डाढ़ी बढ़ कर तीन-तीन इञ्च की सीमा पार कर जाती है और कभी लघु रूप धारण कर एक इञ्च के दायरे में आ जाती है। महाबली की चाल में पहलवानी लापरवाही है, जो दूसरों को उनसे लोहा लेने के लिये चुनौती देती चलती है। जब वह सीना तान कर और दोनों हाथों को अखाड़े से ज़ोर करके निकले हुए पहलवान की तरह ज़रा सीने से पीछे की ओर छोड़कर चलते हैं तो उनकी ओर देखने वाले इस शनि-काया को वीर रूप ग्रहणकर चलते देखकर मुग्ध हो जाते हैं। हमारे मोहल्ले के लोग तृषित नेत्रों से उनकी ओर देखते हैं और इस अलौकिक मूर्ति को देखकर पुलकित हो उठते हैं। हर्षातिरेक से हँसी उनके ओठों से बरबस फूट निकलती है। उनके शरीर पर, घर में तथा मोहल्ले में इधर-उधर मटरगश्त करते समय केवल एक लँगोट रहता है, जिसके कारण

उनके दर्शनार्थियों को उनके भुजदण्ड तथा रानों के गठे हुए शरीर के अवलोकन में पूरी–पूरी सुविधा मिलती है। उनके चंदन से त्रिपुण्ड मण्डित सिर तथा माँसलों पर अंकित चन्दन की रेखाओं से पाँडित्य और भी निसृत हो अपनी शीतलता से दूसरों को तरल कर देता है।

महाबली का मकान ठीक हमारे घर के सामने था, इसलिये कि अब उन्होंने उस मकान को बेच दिया है और उसमें ही एक कोठरी अपने लिये किराये से ले ली है। उनके अपने इस मकान बेचने का भी एक 'इतिहास' है—घटनाओं का एक ऐसा क्रम जो उनके चरित्र पर तथा उनकी कर्मण्यता पर पूरा–पूरा प्रकाश डालता है। इन महाबली के परिवार में केवल दो व्यक्ति थे—वे और उनके नाना जिन्होंने उन्हें दत्तक पुत्र की तरह पाला था। उनके नाना पं० नारायणराव बालकृष्ण जमखण्डीकर बड़े भारी कलाकार थे—मिट्टी से मूर्ति बनाने में वे पारङ्गत थे। गणेशउत्सव के दिनों में उनकी कला का उचित प्रदर्शन होता था। गणपति की एक–एक मूर्ति के उन्हें तीस और चालीस रुपये मिल जाना मामूली–सी बात थी। हमारे महाबली के नाना असल में राज्य के गर्ल्स स्कूल के रिटायर्ड अध्यापक थे। उम्र के बोझ के कारण उनकी कमर झुक गई थी और कुबड़ी उनकी चिर संगिनी बन गई थी— आँखों की उनकी ज्योति मध्दम पड़ गई थी और मट–मैला धुन्ध–सा उनकी पुतलियों के सामने गर्द की पर्त–सा छा गया था। लेकिन हमने अपनी आंखों देखा है, अपनी कला में दक्ष इस कलाकार के हाथ बुढ़पे के प्रतिबन्ध बांध नहीं पाते थे, शांतमना नदी की एक गति से वह काल्पनिक या प्रत्यक्ष किसी की आकृति को माटी की मूर्ति में अवतरित करने के लिये चला करते थे। उनकी यह चिर आँकांक्षा थी कि 'महाबली'

इस कला को सीख लें—प्रयत्न भी इसके लिये उन्होंने कम नहीं किये थे। लेकिन 'महाबली' की अपनी भविष्यत् योजनाओं में मूर्तिकार बनने की तो कहीं क्षीण रूपरेखा भी नहीं थी। उनकी मौलिक कल्पनाओं और विचारों के तारतम्य में एक बार भी उन्हें यह उचित न जंचा कि वे अपने पौरुष को इस कार्य में प्रयुक्त करें। 'महाबली' की भावना अपने नाना की कला के प्रति शून्य और विचार-विमुख ही बनी रही। नाना जिस समय गोलोकवासी हुए उस समय उन्हें सबसे अधिक दुःख इस बात का था कि उनके साथ उनकी कला भी महाविनाश के शून्य में लीन हो जायेगी और जो उन्होंने साधना कला को सजीव बनाने के लिये आजीवन की है, उसकी इति श्री उनके परिवार में अवश्यम्भावी है। लेकिन हमारे महाबली को यह प्रसंग अत्यन्त असङ्गत जँच रहा था—उन्हें इस बात का किंचित् भी अफ़सोस नहीं था कि वे एक सफल मूर्तिकार नहीं बन पाये। नाना अपनी इस वेदना को लिये मर गये।

अब हमारे महाबली पंडित दत्तू जमखण्डीकर इस विस्तृत संसार में एक ईकाई बनकर रह गये थे। उन्हें यह ईकाई बुरी तरह खलती थी। मकान के एक हिस्से को उन्होंने अपने एक स्वजातीय को उठा रखा था। धीरे-धीरे वे स्वयं भी उसी परिवार में सम्मिलित हो गये। महाबली के यह किरायेदार एक सरकारी मन्दिर के पुजारी थे और वे अपनी नवयुवती पत्नी सहित रहते थे। नाना की मृत्यु के बाद महाबली ने एक दिन सोचा इस प्रकार बेकार बैठे रहना उचित नहीं और उसी शाम को लोगों ने कुतूहल से देखा कि महाबली हमारे घर के सामने वाले 'खण्डेराव' के मन्दिर के

सामने चिवड़ा, तली हुई नमकीन तथा शक्कर में पगी हुई मूँगफलियाँ और तमाम अन्य खाने की सामग्रियाँ लिये बैठे हैं । उनके सीधे हाथ में एक बालकों का झुनझुना था और वे उसे बजा–बजाकर मोहल्ले के लड़कों का ध्यान अपनी दूकान की ओर आकर्षित करने का यत्न कर रहे थे । जैसे ही हम घर से निकले कि इनकी इस प्रगति को देखकर चिहुक उठे । बड़े सम्हलकर हमने अपनत्व प्रगट करते हुए कहा—

"दत्तू भैय्या, दुकान लगाई है ?"

"महाबली को अपनी रचनात्मकता का श्रेय मिला वह ज़रा मुस्कराये—"हा···आँ···दुकान ही लगाई है । बैठे–बैठे कुछ करना तो चाहिये ।"—और हँसे ।

लेकिन जब हम लौटकर घर आये तो माँ ने कहा—

"न जाने इस दत्तू को क्या हो गया है, आज शाम को सारी दुकान लड़कों को लुटा दी ? नाना के मरते ही मुझे दिखता है यह घर में बत्ती लगाने पर उतारू हो गया है ।"

मैं माँ की इस बात को सुनकर हँसा, फिर कुछ विनम्र होकर कहा—

"माँ, यह तो हमारे 'महाबली' की उदारता है । जिनके बल–विक्रम की अनेकानेक गाथाएँ हमारे मोहल्ले के लोग गाते हैं, उन गाथाओं के बीच यह तो एक अदना–सी, अत्यन्त साधारण घटना है ।"

माँ मेरी बात सुनकर मुस्कुरा दी । दूसरे दिन महाबली ने मोहल्ले के मन्दिर पर दुकान नहीं लगाई । एक बडा–सा उन्होंने पीतल का

थाल लिया, उसमें एक तरफ दही–बड़े की चाट लगाई, एक तरफ कचौरियाँ, त्रिखूंट और टिकियाँ रखीं और दिग्विजय के लिये निकल पड़े। पहली आवाज उन्होंने मोहल्ले में लगाई। लेकिन किसी ने उनकी ललकार सुनकर आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। वह फिर ज़ोर से चिल्लाये—"टिकिया .... दही—बड़े।"

मैंने अपने कमरे के छज्जे पर आकर कहा—"आ ... हा ... हा ... हा, दत्तू भय्या आज कहाँ दुकान लगाओगे?"

और महाबली ने खोमचा मन्दिर के चबूतरे पर उतारते हुए कहा—"आज तुम हमारी टिकियों का पानी चखो। इसमें ज़ीरा और पुदीना पिसा हुआ है।"

मैंने वैसे ही हँसते हुए कहा—"नहीं ... नहीं दत्तू भय्या, आज पहला दिन है पहले कुछ बिक्री करो फिर हम सब चखें तो ठीक ...।"

महाबली ने इसके आगे उस दिन कुछ नहीं कहा। खोमचा उठाकर चले गये। दूसरे दिन उन्होंने खोमचा लगाने का कष्ट नहीं किया। उस दिन भर महाबली के घर 'गम्मत' होती रही—भङ्ग दुधिया छनी। मण्डली को चिबड़ा और मगज़ के लड्डू वितरित किये गये और गायन वादन होता रहा। खाना खिलाते समय माँ ने फिर विक्षोभ और तिरस्कार भरे स्वर में कहा—"आज मंगल (एक दूसरा पड़ौसी) कह रहा था कि यह तुम्हारे 'महाबली' अपने घर की कुछ चीजें बेचना चाहते हैं। यहां भी पुछवाया है कि फर्शी लेम्प, टेबिल, स्टूल कुछ लेना हो तो ले लें?"

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"माँ, जानती नहीं हो महाबली आज-कल बिज़नेस कर रहे हैं। बिजनेस में जो लगता है वह पता है। कल खोमचा लेकर बाजार परिभ्रमण के लिये गये थे। हमें पूरी आशा है कल वह छोटी-मोटी नहीं कोई महत्वपूर्ण विजय प्राप्त कर लौटे हैं—तभी तो—मैंने कहा तभी तो उनके यहाँ इस समर-विजय के उपलक्ष में गायन-वादन हो रहा है—मंडली के लोगों को दुधिया-भाँग और मग़ज के लड्डूओं से निहाल किया गया है। हमारे 'महाबली' के भीष्म से शौर्य, द्रोणाचार्य-सी समर-योजनाओं और कर्ण-सी दानवीरता का माँ, तुम यशोगान करने में अतीव कृपणता से काम लेती हो।"

माँ ने तब कहा—"बस-बस रहने दे। किस तकलीफ और पेट काटकर 'नाना' ने गृहस्थी बनाई थी जिसे यह मिट्टी में मिलाये दे रहा है।"

एक सप्ताह बाद हमें पता लगा उस दिन की बिक्री के बाद हमारे 'महाबली' की बिक्री न चमक सकी। नित्य वह खोमचा लगाकर ले जाते थे और शाम को वैसा ही वापस लौटाकर मण्डली के सदस्यों की उदर-पूर्ति के लिये सुपुर्द कर देते थे। उन दिनों उनका मस्तिष्क फिर तेजी से काम करने लगा था। हमें पूर्ण विश्वास हो गया था कि 'महाबली' शीघ्र ही किसी ऐसी योजना को रचनात्मक रूप देने वाले हैं, जिससे मोहल्ले वाले दाँतों तले अँगुली दबा लेंगे।

ठीक ऐसा ही हुआ भी। एक दिन सुबह जैसे ही हम सब्जी मार्केट से सब्जी लेकर लौटे हमने महाबली को अनेक छोटी-बड़ी पुरानी

चीजों को बाजार में एक कपड़ा बिछा-सँवारकर रखे हुए देखा। महाबली ने कबाड़ी की दुकान खोली थी। वे चीजें बाजार में तो नहीं, धीरे-धीरे मोहल्ले में ही औने-पौने दामों में बिकीं। इसी बीच और एक महत्वपूर्ण घटना हुई। सौभाग्यवती अम्मूताई के पतिदेव पुजारी जी का स्वर्गवास हो गया और 'महाबली' के सिर पर उस परिवार का बोझ भी आ पड़ा। कुछ दिनों तक मोहल्ले में हमारे 'महाबली' और अम्मूताई की चर्चा हरेक की ज़ुबान पर रही। एक दिन तो यहाँ तक सुनने में आया कि अम्मूताई सौभाग्यदान की पुनः हमारे 'महाबली' से याचना करने वाली हैं। लेकिन फिर बीच में ही धागा टूट गया और 'महाबली' ने प्रचण्ड होकर सौभाग्यदान देना तो दूर रहा अपने घर से भी महिमामयी अम्मूताई को निकाल बाहर किया।

उन्हीं दिनों उनका फिर तेज़ी से सोचना आरम्भ हुआ। मोहल्ले में नित्य 'महाबली' के आगामी कार्यक्रम की चर्चा होने लगी। कुछ लोग उनके रोज़ नये-नये प्रयोगों से घबड़ा गये थे और सोचने लगे थे 'महाबली' अब आगे किसी नयी योजना को जन्म नहीं देंगे और जीवन को 'सम' पर लाने की कोशिश करेंगे। लेकिन हमारा अटूट विश्वास था कि इस निराशामय वातावरण में ही शीघ्र महाबली' किसी घटना को जन्म देने वाले हैं जो आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक विद्युत्-सी चमककर उनके आलोचकों का मुंह बन्द कर देगी। यथार्थ में हमारी बात ठीक निकली। एक दिन सुबह तड़के ही लोगों ने गली के मोड़ पर आम सड़क के एक मकान के चबूतरे पर पं० दत्तू जमखण्डीकर को सब्ज़ी बेचते देखा।

'महाबली' उस समय सब्ज़ी पर पानी के छींटे दे रहे थे। जैसे ही मैं उस तरफ से निकला उन्होंने बैठे-बैठे हाँक लगाई—

"ऐ शम्भू भय्या—इधर।"

मैंने उनके पास जाकर उनकी इस प्रगति के प्रति संतोष प्रकट करते हुए कहा—"ओ—हो—हो गुरू, आज तो बड़ी तैयारियाँ हैं।"

उन्होंने मुस्कुराते हुए अपने बाँयें हाथ के पंजे से दाहिने हाथ के भुजदण्ड को टटोला और फिर जरा गर्व से उस पहलवान की तरह बोले जिसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को एक ही चाँप मारकर भूलुंठित कर दिया हो—"अभी···क्या ··अभी ··क्या ?"

फिर सब्ज़ी बेचकर शीघ्र ही किस प्रकार वे 'श्रीमान्' बनने की सोच रहे हैं उसकी ब्यौरेवार उन्होंने चर्चा की। हम उस दिनकी बातों से अत्यन्त प्रभावित हुए। समय बीतता गया और 'महाबली' के नये-नये प्रयोग नई-नई योजनाएँ अपने नवीनतम विचारों के साथ क्रियान्वित होती रहीं। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि कोई भी असफलता हमारे 'महाबली' के बल-पौरूष के कारण उनके मार्ग को अवरुद्ध न कर सकी—वह बढ़ते गये। इसी बीच अनायास फिर एक बच्चा गोद में खिलाती अम्मूताई 'महाबली' के आश्रम में आ टिकीं। अब तक 'महाबली' का अम्मूताई के प्रति क्रोध शान्त हो चुका था अतएव मैत्री स्थापित होने में कोई बाधा न हुई। इस बार अम्मूताई रोमांस की बड़ी मनोरम कल्पनाएँ लेकर लौटीं। अब 'महाबली' के यहाँ नित्य एक और अनेक की मण्डली जमा होने लगी। वे

नित्य ही महिमामयी अम्मूताई के इंगित पर कोई आयोजन करते; जैसे, सिनेमा की सैर, चाय–पानी, दुर्ग–मन्दिर की परिक्रमा आदि आदि ! एक तरफ महिमामयी अम्मूताई का रोमाँस, दूसरी तरफ 'महाबली' का प्रयोगात्मक जीवन ! महाबली उन्हीं दिनों यह सोचते हुए सुने गये कि संसार के काम इतने अधिक है और जीवन इतना छोटा ! 'महाबली' अपने इसी 'दर्शन' की चर्चा करते हमारे घर आते । हमारे पिता के पास पहुँचे और कहा—"मैं अपना मकान बेच रहा हुं अगर आपको लेना हो तो ले लीजिये ।"

इसके बाद सौदा तय हो गया मकान 'महाबली' का तीन हजार रुपये में खरीद लिया गया । उस रात पिता ने बड़े आर्द्र भाव से घर में कहा––"यह बदमाश औरत इस दत्तू को चौपट किये देती है । इतने बड़े कलाकार का लड़का था । सम्हलकर चलता तो आराम से ज़िन्दगी बसर कर सकता था। लेकिन वह तो यों कहो—"जाको प्रभु दारूण दुखदेई, बाकी मति पहले हरि लेई !'

पिता की इस आलोचना को सुनकर हम बोले कुछ नहीं । लेकिन 'महाबली' के अतुल बल-विक्रम के प्रति यह अविश्वास हमें भला नहीं लगा । 'महाबली'ने अपना मकान हमारे हाथों बेच अवश्य दिया था फिर भी किराये से और मालिकाना अधिकार से ही वे उसमें रहते थे । एक लम्बे अर्से से मोहल्ले की होली के खर्चे का सारा भार पण्डित दत्तू जमखण्डीकर ही वहन करते चले आ रहे थे । लेकिन इस बार होली आने पर उन्होंने अपना हाथ साफ खींच लिया अतएव मोहल्ले में होली ही न जल सकी । होली के दूसरे दिन

पड़वा को वे लँगोट बाँध मन्दिर के सामने वाले चौक जहाँ होली जला करती थी अपनी रान पर ताल ठोक—ठोककर कह रहे थे—"यही इस मोहल्ले की मर्दमी है। इसी पर सब इस मोहल्ले के मुखिया बनना चाहते हैं। किसी ने चार कन्डे रखकर भी होली न जलाई?"

लेकिन संघर्षरत जीवन, आर्थिक कठिनाइयों और अन्य विषमताओं के बीच किसी मोहल्ले वाले में इतना दम नहीं था कि 'महाबली' की इस चुनौती को स्वीकार करता और होली लगाने का जिम्मा अपने ऊपर लेता। उस दोपहर को लोगों ने देखा, एक बड़ा—सा लकड़ी का टुकड़ा होली जलाने के स्थान पर सुलग रहा है और 'महाबली' 'होली के फोदे' द्वारा मोहल्ले के लोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं।

खैर, छोड़िये इन बातों को! यह तो थोड़ी—सी ऐसी हैं जिनके आगे—पीछे बहुत—सी अन्य घटनाओं के मोती पिरोये जा सकते हैं। उसके लिये 'महाबली' का कभी जीवन—चरित्र लिखने का अवसर आया, तब ही अतिक्रमण रूप से क्रमबद्ध प्रकाश डाला जा सकेगा। लेकिन 'महाबली' के इस छोटे से स्कैच को पूरा करते समय एक विशेष घटना की अवहेलना नहीं की जा सकती। उसके बिना उनके स्केच अधूरा रह जायेगा।

गत वर्ष की बात है। महिमामयी अम्मूताई मण्डली के सदस्यों के प्रेषित स्नेह को मूर्त रूप देने जच्चाखाने गई हुई थीं। 'महाबली' का इन्हीं दिनों फिर मस्तिष्क तेजी से काम करने लगा था। अम्मूताई की मण्डली से वह क्षुब्ध हो उठे थे। इसी कारण उन्होंने एक दिन अम्मूताई की अनुपस्थिति में मण्डली के एक—एक सदस्य को खरी—खोटी सुनाकर घर

से बाहर कर दिया। जिस सदस्य ने हेकड़ी दिखलाई उसके प्रति वे अपनी लौह–छाती तानकर खड़े हो गये। स्वर पंचम से सप्तम में जा लगा और उन्होंने इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया कि उनके प्रलयंकर क्रोध को शान्त करने के लिये मोहल्ले के लोगों को बन्दना करनी पड़ी! इस काण्ड के बाद कुछ दिनों तक वे जीवन से वीतराग ग्रहण किये विक्षिप्त से पाये गये। फिर एक दिन लोगों ने वास्तव में दांतों तले अंगुली दबाकर सुना— 'महाबली' ने मधुकरी ग्रहण कर ली है और अब वे अपना जीवनयापन कुछ उदार दक्षिणी ब्राह्मणों के घर से भिक्षा प्राप्त कर करते रहेंगे।

एक दिन माँ ने 'महाबली' की नवीन प्रगति के विषय में किसी से सुनकर घर में कहा—"इस दतुआ ने तो सचमुच 'नाना' का नाम डूबा दिया। घर–बार खत्म करके अब भिक्षा मांगता है। मरता भी तो नहीं है कालिया!"

लेकिन हमें व्यक्तिगत रूप से 'महाबली' से कोई शिकायत नहीं थी। सफलता और असफलता मात्र लोकवाद है! हमारी नज़र तो उनके कर्मवाद पर थी। हमें तो सबसे बड़ी खुशी इस बात की थी कि उनके अब तक के जीवन में न तो आशा का बसन्त रहा और न निराशा की पतझड़ ही—महान् कर्मवादी योद्धा की तरह नित नये प्रयोग ही उनके जीवन की गति बने रहे।

तो मण्डली को खत्म कर और मधुकरी को अपनाकर महाबली तीर्थ यात्रा के लिये पिछले साल निकल गये थे। अभी कुछ महीने हुए लौटे हैं। इस तीर्थ–यात्रा में भी उन्होंने एक प्रयोग किया था। 'महाबली' ने एक

भिक्षुक की कन्या से पाणिग्रहण की बात. मंजूर कर ली थी और उस भिक्षुक के साथ–साथ ही वे नागपुर, नासिक, और पूना में भ्रमण करते रहे थे। लेकिन दक्षिण के जिस गाँव में उस भिक्षुक का मकान था वहाँ पहुँचने के पहले ही उस भिक्षुक से उनका साथ छूट गया और 'महाबली' विदेश की भूल–भुलैयों में भटक गये। साथ ही पाणिग्रहण लाभ से भी वञ्चित रह गये। पास एक फूटी कौड़ी नहीं बची थी। जैसे–तैसे वे फिर ग्वालियर में किनारे आ लगे हैं। लोगों को पूरा विश्वास है कि 'महाबली' के प्रयोगों का जीवन खत्म हुआ और अब वे भविष्य में इस मधुकरी को ही अपनाये रहेंगे। लेकिन हम इस लोकमत के खिलाफ़ दावे से कह सकते हैं कि 'महाबली' हाथ पर हाथ रखे इस मधुकरी द्वारा जीवन यापन करते रहने वाले निष्क्रिय जीव नहीं हैं। उनके जीवन में परिवर्तन शाश्वत सत्य है। तीर्थ यात्रा से लौट आने पर धार्मिकता ने जो उनकी कुंठित हुई रचनात्मकता को थोड़ा–सा विश्राम दिया है जरा उससे उन्हें अपनी थकाव दूरकर लेने दीजिये कि फिर 'महाबली' के नित्य नये प्रयोग और बल पौरुष की गाथाएँ सुनिये। हम तो इस बारे में केवल एक बात जानते हैं—पण्डित दत्तू जमखण्डीकर को 'महाबली' के पद से अपनी मौलिक सूझ और अथक रचनात्मकता के कारण हटाया जाना असम्भव है।

चन्दूलजी

नाम हम उनका क़तई बतलाने के लिये तैयार नहीं हैं। बात यह है उनसे हमारी दोस्ती है और इस दोस्ती की हद्द क्षितिज-सी विस्तृत और मनोभावों-सी गहरी है। कहने का मतलब यह है कि हम एक ज़िगर और दो क़ालिब हैं। लेकिन फिर······लेकिन फिर भी साहेब हमें उनकी हरकतों से नफ़रत है। जी हाँ, कहा न! नफ़रत है—सख्त नफ़रत है।"

हम तीन थे और बांकीपुर स्टेशन से एक्ज़ीबीशन-रोड़ पार कर पिन्टू होटल जा पहुँचे थे। अविनाश अपने सीधे हाथ की अस्तीन लड़ने के लिये आमादा व्यक्ति की भाँति चढ़ाये परांठे के बचे हुए टुकड़े का निवाला बनाने में व्यस्त था। ऊपर की बात नितीन ने कही थी और इस लहजे से कही थी कि अविनाश के हाथ का निवाला मुँह में जाते-जाते आस्मान के टूटे हुए तारे की तरह यकायक फिर गिर कर प्लेट में आ गया था। हम चुप थे।

नितीन ने अविनाश की तरफ़ कुछ अधिक मुख़ातिब होते हुए-एक मन्द मुस्कान अपने आनन पर दीप्त करते हुए फिर कहा—

"दोस्ती और नफ़रत! आप चौंक पड़े। लेकिन हज़रत् क्या यह नहीं हो सकता कि जिस चीज़ से प्रेम किया जाये उससे नफ़रत भी?"

और उसने अपनी आँखों को अविनाश के चहरे पर स्थिर कर एक प्रश्न सूचक चिन्ह-सा लगा दिया। अविनाश कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप किसी बात पर गौर कर रहा था। लेकिन उसकी अंगुलियाँ भावना की तरंगित लहरों-सी प्लेट में भँवर बना रही थीं। नितीन ने दूसरे ही क्षण अपनी दृष्टि उसके चहरे पर से हटाली और मेरी ओर देखते हुए कहा—

"भाई साहेब, प्रेम इन्सान से किया जाता है और नफ़रत उसकी विगलित घृणित हरकतों से।"

और वह हँसा—

इसीलिये मैंने कहा 'मेरी उनसे दोस्ती अवश्य है, लेकिन उनकी नाजायज़ हरकतों से मेरी दुश्मनी है—मुझे उनसे चिढ़ है।"

कहते-कहते वह रुका। एक मिनट तक वह जैसे अपने अन्दर कुछ टटोलता रहा।

फिर बोला—

"सबसे बड़ा दोष मैं व्यक्ति में ईर्षा मानता हूँ। किसी के सरसब्ज़ बाग़ को देख उसको नष्ट कर देने का विचार अमानवीय तो है ही साथ ही इसे मैं रीएक्शनरी (अप्रगतिशील) भी मानता हूँ। इस प्रश्न को केवल जीवन की कमज़ोरी कह कर नहीं टाला जा सकता।"

नितीन की इस साङ्केतिक बातचीत से और बात को अनावश्यक बढ़ाकर कहने के ढंग से, मेरे अन्दर की उत्फुल्लता नष्ट हुई जा रही थी।

मुझे कुछ उलझन महसूस हो रही थी।

मैंने कहा—

"भाई नितीन अगर तुम थोड़े में अपनी बात कह सको, तो ठीक है। मैं समझता हूं घटना वर्णन में मनोविज्ञान का समन्वय दुराग्रह है।"

नितीन ने इस बार बात को उलझाया नहीं, कहने लगा— 'भाई साहब अभी मैंने आपसे कहा था, कि मैं उनका नाम क़तई नहीं बताऊँगा और मैं उसे नहीं बताऊँगा। लेकिन इसके साथ मैं यह भी नहीं भूला हूं कि मैं किसी व्यक्ति के विषय में आप लोगों से बातचीत कर रहा हूं। अतएव मुझे अपनी बात पूरी करने के लिये कुछ नाम अवश्य लेना होगा। लीजिये मैं उन्हें चन्डूलजी कहूँगा।

तो सुनिये। यह चन्डूलजी पहले कवि थे अब गद्य-लेखक हैं। लेकिन इससे तो आपका कोई सरोकार नहीं है मैंने बात हरकतों की उठाई है—उसमें व्यक्तित्व नहीं घसीटा जा सकता। मैं भी किसी के व्यक्तित्व को घसीट कर जघन्य पाप नह कमाऊँगा।"

इस समय मेरी विचित्र स्थिति थी। मुझे नितीन की बातों में कोई रस नहीं आ रहा था—अनासक्ति ओर अरुचि ही अधिक थी। फिर भी मैं उसे बीच में दुबारा रोककर उसे नाराज़ नहीं करना चहता था। मैं खमोश बना रहा।

नितीन कहे जा रहा था—

"यह चन्डूलजी कवि, कहानीकार, समलोचक प्लस सम्पादक भी

कहे जाते हैं। लेकिन मुआफ़ कीजिए दर असल इनमें से यह क्या हैं, यह बहरहाल अभी तक मैं तो तय नहीं कर पाया हूँ।

अविनाश हँसा। जैसे अँधेरे के बाद रोशनी में आ गया हो। नितीन ने आगे कहा—

"ईर्षा, जिसे मैं व्यक्ति का सबसे बड़ा अपराध मानता हूँ, इन हज़रत की नस–नस में रवाँ है, जैसे पंजाबी भाई अनेक शाकों को काट–छाँट कर मिलाकर सलाद तैयार करते हैं।

एक दिन घर आये, मैं उस समय मुन्शी प्रेमचन्द का गोदान बड़ी रुचि से पढ़ रहा था। बोले—

"मियाँ ख़्वाम–ख़्वाह क्यों वक्त ख़राब कर रहे हो जो मरा वह गया—प्रेमचन्द इज़ नो मोर।"

मैंने उन्हें सर से पाँव तक जो देखा तो सन्न रह गया—उनके सर पर बनी खल्वाट पर कुछ खिचड़ी बाल इस तरह दीख रहे थे, ज्यों तुषारपात से नष्ट खेत में दो–चार अरहर के पेड़ शेष रह गये हों। चहरे के झाईंदार धब्बे साफ़ आसमान पर चिट्टों की तरह स्नो की रगड़ से कुछ अधिक स्पष्ट हो गये थे। उनकी बड़ी–बड़ी विस्फारित पथराई आँखें सामने के शून्य में तिर रही थीं। उनका दाहिना हाथ कत्थई अनक्रीज़्ड पैन्ट में था और वे एक पाँव में खम दे कूल्हा उचकाते हुए और हमारे सन्निकट आ खड़े हुए थे। हम उन्हें यूं मुस्तैद देखकर परेशान थे। सही मानिये सख्त परेशान थे। अभी हम सम्हल भी नहीं पाये थे कि वे हमें भौंचक्का देखकर—

हिल•••ल हिल हिल' कर हँस पड़े। पानों से सियाह मुँह पन–डब्बे–सा हमारे सामनें खुल गया। दूसरे ही क्षण कुछ गम्भीर हो कर बोले—

"इस युग का महान कलाकार मैं हूं। तुम अभी बच्चे हो, भला क्या जानों साहित्य की परिभाषा? अजी मैंने कहा अपने क़लम की नोंक भी अगर भगवतिया (हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और कवि श्री भगवतीचरण वर्मा) पर रख दूँ, तो खत्म कर दूंगा।"

मेरे सामने की ईज़ीचेयर पर वे बैठ गये थे। अब कुछ अधिक स्वस्थ और दिलचस्प होकर उन्होंने कहना शुरू किया—

"लोग बिदेशी लेखकों के भवर में पड़े हुए हैं—गोर्की एन्टन चेखव, ल्यू तोल्सतोई, मोपांसा, इमर्सन, थोरो, आंस्कर वाइल्ड, अनातोले फ्रांस, इनकी जूठन चट कर रहे हैं। लिया, किसी की कहानी या लेख को पढ़ा और करके रख दिया अनुवाद! कोई माई का लाल आये हमारे सामने जिसने हमारी तुलना में मौलिक साहित्य–सृजन किया हो।"

और उन्होंने इस ज़ोर से अपनी आखिरी बात की ताईद करते हुए सीधे हाथ के घूंसे का ईज़ीचेयर के हत्थे पर प्रहार किया, कि हमारा सारा शरीर एक बारगी हवा में मर–मर करते पीपल के सूखे पत्ते की तरह दोलित हो उठा। हमने मन ही मन सोचा–आज बड़ी तैयारियां हैं—ईश्वर बचाये। प्रत्यक्ष में हमने बात टालने की ग़रज़ से कहा—

"तो उस गल्प–सम्मेलन•••••

और उन्हों‌नें बीच ही में बात काटते हुए पूछा—

"कौन–सा गल्प–सम्मेलन ?"

हमने अपने को बड़े सम्हाल कर कहा—

"वही जो अभी मुज़फ़्फ़रपुर में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के सभापतित्व में हुआ था। सम्भवतः आपको सूचना नहीं मिली।"

चन्डूलजी अपने अभिमान से ज़रा बिदके और फिर कुछ तैश में आकर बोले—

"हम ऐसे लौंडों के गल्प–उल्प सम्मेलन में नहीं जाते। साहित्य कोई चूं–चूं का मुरब्बा तो है नहीं कि पैकेट खोला और महावीरजी के प्रसाद की तरह एक–एक क़तली श्रोतागणों में बांट दी। हम जानते हैं साहित्य–सृजन के लिये कितने संयम की ज़रूरत है, जिसकी इस नवीन पीढ़ी में ज़बरदस्त कमी है। क़लम पकड़ी नहीं कि बन गये कहानीकार।"

और कहते–कहते उन्होंने अपने चहरे को इस भौंडे तरीक़े से मोड़ा कि हमारे मुँह से हँसी अंडी से चटखे हुए बीज–सी दूर जा पड़ी। उन्होंने ग़ुस्से से हमारी तरफ़ तरेरते हुए कहा—

"मज़ाक़ समझते हो। क़ायल हो रामकुम्ब रवां (हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं एकाङ्की नाटककार प्रो० रामकुमार वर्मा) के एकाङ्की नाटकों के। जन ब,ज़रा मेरे एकांकियों से उनकी तुलना करो,फिर देखो मालाई उतरे दूध से लगते हैं वे, या नहीं। लेकिन यह कहो हम तो मूक साधक हैं। हमें क्या मतलब यह ब्रॉडकास्टिंग कवि लेखक, समालोचक बनने की ! बने रहें बुढ़ऊ गुलाबराय (हिन्दी के विद्वान समलोचक) श्रेष्ठ–समालोचक, बना रहे जैनेन्द्र (हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार) श्रेष्ठ कहानीकार, करे जायें 'अंचल'

और 'सुमन' (हिन्दी के प्रगतिशील नवयुवक कवि) अपनी रचनाओं का
झूठा प्रचार और पीटे जायें ढोल फ़ीरोज़ाबादी बनारसी) सम्पादक-प्रवर
पं० बनारसीदास चतुर्वेदी) विकेन्द्रीकरण, प्रान्त-निर्माण और हिंदी-साहित्य
के लिये दस वर्षीय योजना का। लेकिन यह लोग ज़रा पहाड़ के नीचे आयें,
तो अपनी ऊँचाई का पता लगे। मैं सही कहता हूं तुमसे जिस दिन मैं इनमें
से किसी के भी खिलाफ़ क़लम उठा लूंगा, जीता दफ़ना दूंगा।"

फिर बड़ी स्निग्ध-विमुग्ध दृष्टि से एक अखबार की कटिंग निकाल कर देखने लगे।

हमारा कुछ कुतूहल बढ़ा। पूछा—

"शायद आपका कोई लेख है ?"

वे भादों के बादल की तड़प से बोले—

"क्या वाहियात बकते हो ? मैं अवनीन्द्र विद्यालङ्कार (नवयुग सम्पादक श्री० अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार) की तरह अँग्रेज़ी के लेखों की कटिंग का रूपान्तर नहीं करता—मैं ओरीजिनल (मौलिक) साहित्य-सृजन करता हूं।"

और उन्होंने अपनी गर्दन शुतुर्मुर्ग़ की तरह सतर करली और फिर एक उपहासात्मक ढंग पर अंगुलियाँ नचा कर कहने लगे—

"कल का लौंडा······अजी वही शम्भुनाथ (लेखक) लगा बघारने अपनी ! हमनेकहा—

"बन्ने घर का रास्ता नापो। अभी अध्ययन करो—अध्ययन ! चार किताबे अँग्रेज़ी की पढ़ लीं, तो हो गये तीस मारखां। अजी अभी

विशारद करो, साहित्यरत्न की डिग्री हासिल करो और इसी ज़िन्दगी में एम० ए०, एल–एल० बी० करो, तब आकर बात करना।"

हमने कहा—

"लिखता तो वह कमाल का है। जिनेन्द्रजी के शब्दों में उसका प्रोज़ बड़ा इन्टलैक्चुअल (बौद्धिक) और ओजपूर्ण होता है।"

और उन्होंने बल्ब के फ़्यूज़ होने के पूर्व की चमक–सा कहा—

"क्या ख़ाक लिखता है। एक दफ़ा एक कहानी लेकर आया।

हमने कहा—

"अभी महावरा डालो, लिखो और फाड़ डालो। इस बात को अभी मुश्किल से पाँच एक बरस हुए होंगे। और आज जो मिला तो लगा ज़मीन और आस्मान के क़ुलाबे मिलाने! पुश्किन यह कहता है, फ्रायड का मनोविज्ञान यह है। बर्नाड शॉ के एकाङ्की बला के चुभते और दारुण, आक्रान्त समाज के प्रति सदेह कटूक्ति होते हैं। न जाने क्या–क्या बलाओ–बत्तर बाता था।"

फिर ज़रा कुछ थक कर बोले—

"लाहौल विला, हम भी कहाँ से कहाँ जा पहुँचे। सुनो हमारी इस कहानी को।

लोग हमारे प्राचीन आदर्शों की परम्पर को भूल गये हैं। ज़रूरत है उनके पुनरुत्थान की। आदर्श की, सनातन से चले आने वाले आदर्शों की कोई जीवन में उपेक्षा कर सका है—भला।"

और उनका एक ओठ कुछ टेढ़ा हुआ—विस्मय उनकी आँखों से सशङ्कित दूर्वा टुगते चंचल मृगछौने-सा झांका और फिर वे वाज़ कहते मौलवी की तरह हिल-हिल कर कहने लगे—

"हां...अं आदर्श से विमुख हो कहाँ जायेगा बेचारा मानव! अनावृत नारियों को यथार्थ के कैन्वास पर पेन्ट कर देना सरल है। लेकिन यथार्थ में आदर्श का समन्वय करना बिरलों का ही काम है। मैंने अपनी कहानियों और एकाङ्कियों द्वारा वही अमर सन्देश पाठकों तक पहुँचाया है।'

मैंने अपनी शरारत को छिपाते कहा—

"लेकिन आप तो अपनी कहानी सुना रहे थे।"

उन्होंने फिर हमें घूरा, बोले—

"तुम कलाकार के मूड को नहीं पहचानते। तुमने हमारे विचारों की श्रृंखला भंग कर दी।"

कहते-कहते नितीन ने विचित्र ढंग से अपनी ग्रीवा को मोड़ा, जिसे देख कर अविनाश फव्वारे-सा खिल-खिला कर फूट पड़ा—

"यार तुम्हारे अभिनय के हम क़ायल हैं।"

नितीन ने बसभर अपनी हँसी छिपाते हुए कहा—

"क्यों?"

अविनाश ने नितीन की पीठ थपथपाते हुए कहा—

"तो बताऊँ आपके चन्डूलजी का नाम।"

नितीन ने वैसे ही हँसते हुए पूछा—

"अच्छा सुनूँ !"

और जो कुछ अविनाश ने कहा उसे सुनकर हम दोनों खिल–खिला कर हँस पड़े।

अविनाश तह तक पहुँच गया था।